चन्दामामा
अप्रैल १९६८
75 P

Chandamama
Press
VADAPALANI
MADRAS 26
OFFERS YOU...
FINEST PRINTING.-
Equipped with
PHOTO GRAVURE
KLIMSCH CAMERA
VARIO KLISCHOGRAPH-
-BLOCK MAKING
and a
host of Others....

चन्दामामा

अप्रैल १९६८

चन्दामामा
संचालक : चक्रपाणी
आवेश में आकर मनुष्य क्या कर बैठता है, और कैसे ग़लत रास्ते पर क़दम रखता है? इसका परिचय करानेवाली कुछ कहानियाँ हम इस अंक में दे रहे हैं। ये कहानियाँ जहाँ नीतिप्रद हैं, वहाँ उपदेशात्मक भी हैं।
"अत्याचार" नामक कहानी में चन्डवर्मा राजकुमारी को चुराने के प्रयत्न में कैसे अपना विनाश कर बैठता है, पढ़ते ही बनता है। "सच्चा इन्साफ़" ईर्ष्या के फल का उदाहरण है।
वर्ष : १९ अप्रैल १९६८ अंक : ८
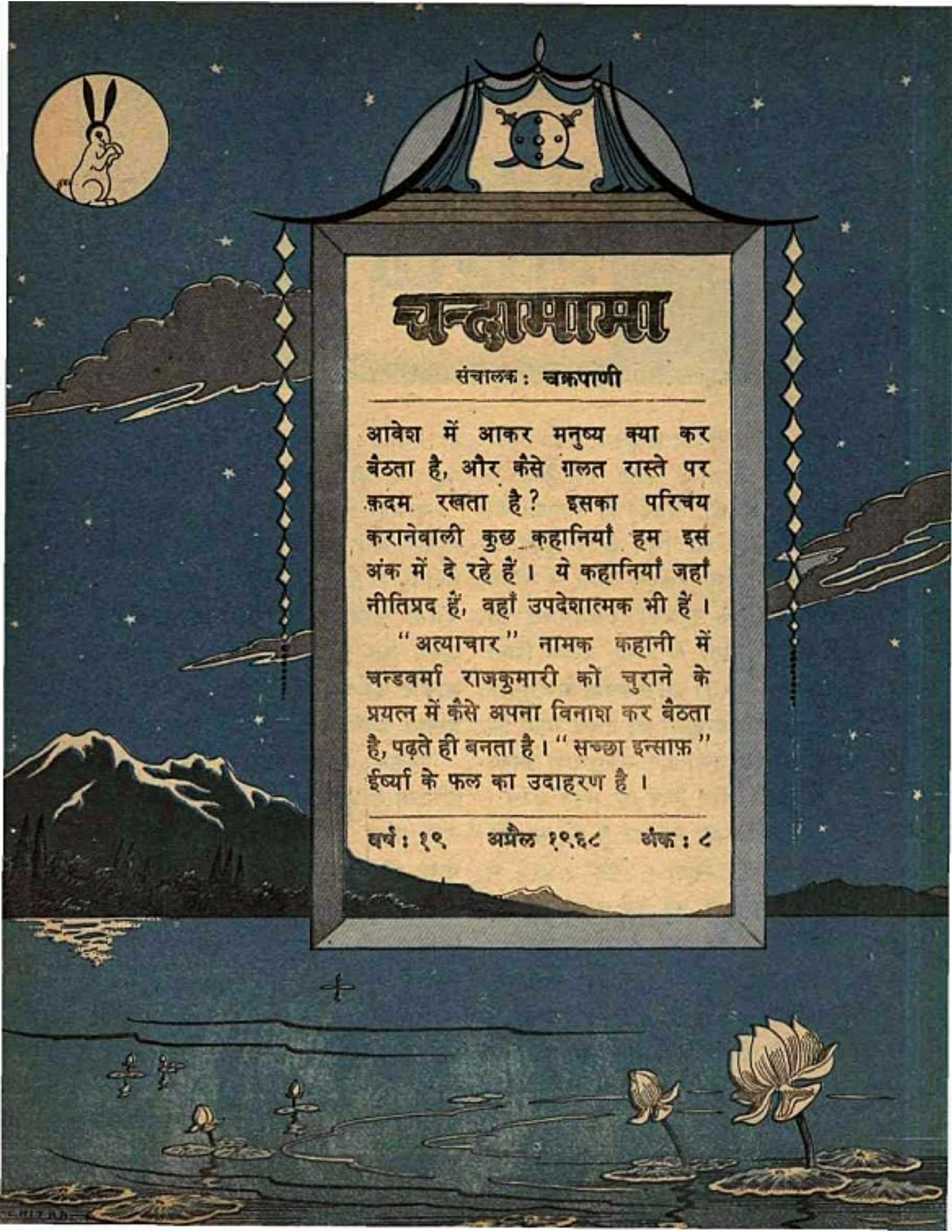
भारत का इतिहास

निज़ाम हैदरअली को छोड़कर अंग्रेजवालों से जा मिला। फिर भी हैदर ने लड़ाई बंद न की, बंबई की सेनाओं को हराकर मंगलोर को फिर अपने क़ाबू में कर लिया। सन् १७६९ मार्च में मद्रास के पांच मील तक पहुँचकर अंग्रेज़वालों को ज़बर्दस्ती समझौता के लिए बाध्य किया (४ अप्रैल १७६९)। इस समझौते के अनुसार अंग्रेज़वालों ने हैदरअली को वचन दिया कि उस पर जो भी हमला करे, अंग्रेज़वाले उनका सामना करेंगे और हैदर की मदद करेंगे।

परन्तु मद्रास की सरकार ने इस समझौते को अमल नहीं किया। सन् १७७१ में महाराष्ट्रों ने हैदर पर जब चढ़ाई की तब अंग्रेजों ने हैदर की मदद न की। इसलिए हैदर ने अंग्रेज़वालों से बदला लेने का इंतजार किया। वह १७७९ म अंग्रेज़ों के खिलाफ़ जो संघटन हुआ था, उसमें शामिल हो गया। इस संघटन में निज़ाम और महाराष्ट्र भी सहस्य थे।

जुलाई १७८० में हैदर अस्सी हज़ार सैनिकों और एक सौ तोपों के साथ कर्नाटक मैदानों पर एक बाढ़ की तरह आया और अंग्रेज़ी फ़ौज के सेनापति कर्नल बेली और उसके दल को हरा दिया। अक्टूबर में आर्काट को घेर लिया। अंग्रेज़ों की ईस्ट इंडिया कंपनी कठिनाइयों में फंस गयी।

लेकिन अंग्रेज़ गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स ने अपने प्रधान सेनापति के अधीन बड़ी फौज देकर हैदर पर हमला करने भेजा और साथ ही हैदर की दोस्ती से बिरार के राजा, निज़ाम तथा महादाजी सिंधिया को भी फूट डाला। तो भी इन सब की परवाह किये बिना हैदर ने अपनी सारी ताकत लगाकर लड़ाई जारी की और १७८१ में पोर्टनोवो के पास हार गया।

अंग्रेज़वालों से अंतिम निर्णय करने के पहले ही हैदर १७८२ दिसंबर ७ तारीख को नासूर से पीड़ित होकर मर गया।

हैदर के बाद उसके पुत्र टीपू सुलतान ने अंग्रेजवालों से लड़ाइयां जारी कीं। ब्रिटिशवालों के प्रधान सेनापति के रूप में ब्रिगेडियर माथ्यूस को बंबई सरकार ने नियुक्त किया। पर टीपू ने उसको तथा उसके सिपाहियों को १७८३ में बंदी बनाया।

नये अंग्रेज गवर्नर मकार्ट्नी ने टीपू के पास संधि-पत्र भेजा। १७८४ मार्च में मंगलोर में संधि हुई। यह संधि गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स को पसंद न आयी।

टीपू जानता था कि इस संधि का कोई मतलब नहीं, अंग्रज़ों से उसे लड़ाई करनी ही पड़ेगी। उसने जैसा सोचा था वैसे ही अंग्रेज़ों और मैसूर के बीच तीसरी बार युद्ध हुआ। इस युद्ध के लिए ज़रूरी वातावरण नये गवर्नर जनरल कारनवालीस ने (१७८६-१७९३) पैदा किया। उसने १७८८ में निज़ाम से गुंटूर ले लिया। १७८९ जुलाई ७ तारीख़ को निज़ाम के नाम पत्र लिखते हुए, उसमें टीपू का नाम उल्लेख न किया, निज़ाम के साथ "शाश्वत सहयोग" का इंतजाम किया और उसी को

संधिपत्र मानने का अनुरोध किया। इस तरह कारनवालीस ने १७८४ की टीपू के साथ की गयी संधि का भंग किया।

इस हालत में टीपू ने १७८९ दिसंबर २९ को तिरुवांकूर पर हमला कर दिया। मंगलोर की संधि के अनुसार अंग्रेजवालों की सहायता पाने की योग्यता रखनेवाले तिरुवांकूर के राजा ने मद्रास गवर्नर (जॉन हालंड) से मदद करने की प्रार्थना की। पर कोई सहायता न मिली। कारनवालीस ने मद्रास सरकार की नीति पर असन्तोष प्रकट किया। इसके कुछ महीने बाद (१७९० जून, जुलाई) निज़ाम और

महाराष्ट्रों ने भी अंग्रेजों के साथ 'त्रिपक्ष संधि' कर ली। इसके बाद ही अंग्रेजों और मैसूर के बीच तीसरा युद्ध हुआ।

दो साल तक लगातार यह लड़ाई जो चली उस दौरान में कुल तीन युद्ध हुए। पहले युद्ध में अंग्रेजी सेनापति से भी बढ़कर टीपू ने अपनी युद्ध-कुशलता का परिचय दिया। इसलिए दूसरे युद्ध में कारनवालीस ने खुद सेनापति का पद संभाला और अपनी सेनाओं को वेल्लूर और आंबूर से होकर चलाते हुए १७९१ मार्च २१ तारीख़ को बेंगलूर पकड़ा। मई १३ को वह अरिकेला पहुँचा। यह प्रदेश टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टण से नौ मील पूरब की ओर है। लेकिन इस लड़ाई में भी टीपू ने अपनी अपूर्व युद्ध-कुशलता का परिचय दिया।

फिर टीपू ने कोयंबत्तूर को पकड़ा (नवंबर ३)। परंतु उसके श्रीरंगपट्टण को लौटने के रास्ते में स्थित पहाड़ी दुर्गों को कारनवालीस ने बंबई से आयी हुई फ़ौज की मदद से घेर लिया और १७९२ फ़रवरी ५ तारीख़ को श्रीरंगपट्टण की सरहदों को घेर लिया।

टीपू ने राजनैतिक चतुराई से विनाश से अपने को बचा लिया। पर उसने यह जान लिया कि अंग्रेजों के साथ बराबर संघर्ष करने से उसका कोई फल न होगा। काफ़ी चर्चा के बाद १७९२ मार्च में श्रीरंगपट्टण में एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार टीपू अपना आधा राज्य खो बैठा। कृष्णा नदी के किनारे से पेन्नार नदी के उस पार के प्रदेश को निज़ाम को तथा दूसरा हिस्सा महाराष्ट्रों को देना पड़ा। इस कारण से महाराष्ट्रों की सीमा तुंगभद्रा नदी तक फैल गयी। मलबार, कूर्ग राजा पर अधिकार, दिण्डिकल और उसके आसपास का प्रान्त ३० लाख स्वर्ण-मुद्राएँ नुक़सान मद्दे अंग्रेज़ों को प्राप्त हुईं।

कर्ण और अर्जुनका जन्म-रहस्य

देवताओं के अग्रणी दक्ष प्रजापति ने एक महायज्ञ करने का संकल्प किया। उस मौक़े पर उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के साथ गरुड, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर वग़ैरह गणों को भी निमंत्रण भेजा। यज्ञ-शाला, देवताओं और नारद आदि मुनियों के साथ देखने में बहुत ही शोभायमान थी।

यज्ञ के प्रारंभ करने के पहले किसी एक पूज्य व्यक्ति को आधिपत्य देना था। यह गौरव त्रिमूर्तियों में से किन्हीं एक को देना होगा; लेकिन किनको दिया जाए, यह प्रश्न दक्ष के लिए विचारणीय था। ब्रह्मा तो साक्षात् सृष्टिकर्ता हैं; विष्णु तो सर्व शक्तिमान और चालाक भी हैं; ईश्वर तो महा क्रोधी और उग्र स्वभाव के हैं। इनमें से किन्हीं एक को अधिपति चुना जाए तो बाक़ी दोनों को अपमान-जनक होगा। इस उलझन से बचने के लिए दक्ष ने नारद को अलग बुलाकर उनकी सलाह माँगी।

नारद ने दक्ष को समझाया–"तुम इस झंझट में क्यों पड़ते हो? तांबूल ले जाकर तीनों के सामने रख दो और उनसे निवेदन करो कि उनमें से कोई एक आधिपत्य को स्वीकार करके तांबूल ले लें। इसके बाद वे ही निर्णय कर लेंगे।"

दक्ष ने ऐसा ही किया। त्रिमूर्तियों ने एक दूसरे को देखा। ब्रह्मा ने यज्ञ के आधिपत्य की आवश्यकता अस्वीकार करते से सर घुमा लिया। विष्णु और महेश्वर ने एक दूसरे को तिरछी नज़र से देखा। दोनों के मन में यह विचार था कि एक अस्वीकार करे तो दूसरा तांबूल ले। दोनों के मन में एक दूसरे का भय था।

इस हालत में विष्णु ने ही साहस करके, हाथ बढ़ाकर तांबूल ले लिया।

स्वदेश कुमार

प्रतिष्ठा के लिए ही सही उनकी अनुमति लिये बिना विष्णु ने यह कार्य किया। इससे शिवजी को बड़ा क्रोध आया। उस क्रोधावेश में शिवजी ने अपने त्रिशूल को ज़ोर से जमीन में गड़ा दी। इससे पृथ्वी में से एक महाकाय व्यक्ति पैदा हुआ। उसकी देह पर सात कवच, कर्णकुंडल और धनुष-बाण थे।

शिवजी ने उस महाकाय व्यक्ति को आशीर्वाद दिया और उसे विष्णु को दिखाते हुए बोला—"उन की खबर लेना।" इस के बाद वे कैलास चले गये।

उस महाशक्ति ने रौद्र रूप धारण कर विष्णु पर हमला किया। विष्णु उसे देख भयभीत हो भागने लगे। महाकाय ने विष्णु का पीछा किया।

दोनों भागते-भागते एक मैदान में पहुँचे। वहाँ पर विष्णु ने महाकाय के साथ युद्ध करना शुरू किया। दोनों ने एक दूसरे पर बाणों की वर्षा की। विष्णु के बाण शिवजी की शक्ति का कुछ बिगाड़ न सकें। क्योंकि उस शक्ति के शरीर पर सात कवच थे। परंतु महाकाय के बाण विष्णु को घायल बना रहे थे जिससे विष्णु के शरीर से खून बहने लगा।

विष्णु तो चालाक हैं। इसलिए वे सोचने लगे कि इस विपत्ति से कैसे पिंड

छुडावें। शिवजी की शक्ति उस से भी ताक़तवर क्यों है! वह तो मिट्टी से जन्मी है! इसलिए उसे हराने की शक्ति उनमें नहीं है। शिवजी की शक्ति को हरानेवाले को मिट्टी से ही पैदा होना है!

यह सोचकर विष्णु ने अपने ख़ून से सनी थोड़ी मिट्टी निकालकर, उससे एक पुतला बनाया और उसमें प्राण फूंके। वह विष्णु की शक्ति थी। उसने विष्णु के हाथ से धनुष-बाण लेकर शिवजी की शक्ति पर हमला किया। दोनों शक्तियों के बीच घमासान लड़ाई शुरू हो गयी।

विष्णु की शक्ति के प्रत्येक बाण से शिव-शक्ति का एक-एक कवच टूटकर गिरने लगा। इस तरह छे बाणों के प्रयोग से छे कवच निकल गये। अब शिव-शक्ति के शरीर पर एक ही कवच बचा था।

उस हालत में शिव-शक्ति ने लड़ाई के मैदान से भाग कर सूर्य की शरण ली। शरणागत को अभय प्रदान करना कर्त्तव्य है। इसलिए सूर्य ने शिव-शक्ति को अभय प्रदान किया।

इतने में शिव-शक्ति का पीछा करते हुए विष्णु सूर्य के पास पहुँचे और शिव-शक्ति को छोड़ने की सलाह दी।

सूर्य को जब मालूम हो गया कि शिव-शक्ति ने उस से शरण इसलिए माँगी कि विष्णु से रक्षा करें। इस पर भय से काँपते हुए सूर्य ने विष्णु से निवेदन किया–"भगवन्, मुझे मालूम न था कि यह आप से रक्षा करने के लिए शरण चाहता है। यह जाने बिना भूल से शिव-शक्ति को मैंने अभय दे दिया है। अगर मैं उसे छोड़ दूं तो शाश्वत रूप से मुझ पर कलंक लगा रहेगा। अतः आप कोई ऐसा उपाय सोचिये जिससे हम दोनों की इज़्ज़त बनी रहे।"

विष्णु ने थोड़ी देर सोचकर कहा–"ऐसा ही करेंगे। शिव-शक्ति को तुम अपने ही पास रखो। आनेवाले युग में महाभारत युद्ध होगा। उस में धृतराष्ट्र और पांडु के पुत्रों के बीच युद्ध होगा। राजा पांडु की होनेवाली पत्नी कुंती कन्या के रूप में रहकर परीक्षा के हेतु तुम्हारी प्रार्थना करेगी। तब तुम इस शिव-शक्ति को उसे पुत्र के रूप में प्रदान करो।" यह कहकर विष्णु चले गये।

इस के बाद विष्णु अपनी शक्ति को साथ लेकर इंद्र के पास गये और बोले–"देवेन्द्र! यह विष्णु-शक्ति है! इसे तुम अपने पास रखो। आनेवाले युग में जब कुंती तुम से पुत्र मांगेगी तब यह शक्ति उसे प्रदान करो।"

सूर्य और इंद्र ने भी विष्णु के कहे अनुसार किया। इस से कुंती के गर्भ से कर्ण और अर्जुन पैदा हुये। कर्ण उस समय की शिवजी की शक्ति है तो अर्जुन विष्णु की शक्ति है। विष्णु ने ही उस युग में कृष्ण का अवतार लेकर महाभारत युद्ध में अर्जुन के द्वारा कर्ण का वध कराया और इस तरह शिवजी की शक्ति का सदा के लिए निर्मूल किया।

[३]

[शिवाल के साथ सभी देहाती फिर शबर गाँव में पहुँचे। विक्रमकेसरी ने शिवाल को ताड़पत्रों की थैली दिखाते हुए कहा कि उसके दादा एक बार और ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर गये थे। शिवाल ने शिखिमुखी को थैली लाने का आदेश दिया। इसी बीच एक विकृत आकृति उनके सामने प्रत्यक्ष हुई। सब चकित होकर देखते रहे... इसके बाद...]

विकृत आकार चुपचाप एक एक क़दम रखते शिवाल के निकट आया और बोला–"तुम सब लोग ज़बर्दस्ती मरना न चाहे तो वह थैली मेरे हाथ दे दो। मैं पिछले एक हज़ार सालों से शिथिलालय का पुजारी हूँ। उसको देखने के विचार से जो कोई ब्रह्मपुत्र नदी की घाटियों में आया, वह जान से नहीं लौटा।" यह कहते थैली के वास्ते उसने हाथ बढ़ाया।

इस बीच शिवाल संभल गया और तीक्ष्ण दृष्टि प्रसारित करते हुंकार कर उठा–"घर आये अतिथि को चाहे बिना बुलाये क्यों न आये हो और अंट संट बकते हो तो भी शबर लोग उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करते। इसलिए मैं नरम शब्दों में कहता हूँ कि तुरंत बाहर चले जाओ। वरना खैर नहीं।"

"अच्छा जाता हूँ। शिथिलालय के पुजारी की शक्ति और सामर्थ्य को तुम नहीं जानते। मैं इस अपमान का बदला जरूर लूंगा। इस थैली में जो ताडपत्र हैं, वे तुम्हारे और विक्रमकेसरी के नाश के लिए ही काम देंगे।" यह कहते वह विकृत आकार दरवाज़े की ओर बढ़ा और देखते देखते अचानक ग़ायब हो गया।

उसका दरवाज़ा खोलना और बंद करना किसी को दिखाई न दिया।

शिखिमुखी और विक्रमकेसरी ने तुरंत दरवाज़े के पास जाकर खोला और बाहर देखा। बाहर घना अंधकार था। विकृत आकार कहीं दिखाई न दिया। घर के चारों तरफ़ जो बाड़ा था उसके पास दो चार शबर युवक खड़े हो घर का पहरा दे रहे थे। शिखिमुखी ने उनके निकट जाकर पूछा–"पिशाच की तरह लंबा और काली पोशाकवाला जो इधर आया, वह कहाँ चला गया?"

"काली पोशाकवाला? ऐसा आदमी कोई इधर नहीं आया।" यह कहते पहरेदार अचरज में आ गये। इतने में काला कुत्ता भूंकते सरोवर की ओर दौड़ने लगा। विक्रमकेसरी और शिखिमुखी बिना कुछ अधिक सोचे-विचारे उसका पीछा करने लगे।

जब वे दोनों सरोवर के निकट पहुँचे तब सरोवर में कोई भारी चीज़ धम से गिरने की आवाज़ हुई। सरोवर के चारों तरफ़ घने और ऊँचे उगे हुए पेड़ों की आड़ में छाया की भांति मानव आकृतियाँ हिलते दिखाई दीं। विक्रमकेसरी धीरे से बोला–"शिखिमुखी, जंगल में धोखे से मुझ पर हमला करनेवाले दुष्टों का शायद वह विकृत आकारवाला नेता हो सकता है। उसको या उसके अनुचरों में से किसी एक को पकड़ने से उस विकृत

आकारवाले की चाल का हम पता लगा सकते हैं।"

"अच्छी बात है। तब तो हम दोनों एक ही दिशा में न जाकर अलग-अलग दिशाओं में जाएंगे। वे तो हिम्मतवर हैं। भाला फेंकने से वे चूकेंगे नहीं, घायल भी हमें मिले तो हमारा प्रयत्न सफल होगा।" यह कहते शिखिमुखी सरोवर की बाईं ओर के पेड़ों की तरफ़ भागने लगा। विक्रमकेसरी दाईं तरफ़ दौड़ पड़ा।

घने पेड़ों के पीछे शिखिमुखी को चोरों की बातें और उनके चलते समय पैर के नीचे पड़ने से सूखे पत्तों की सर सर की ध्वनि सुनाई दी। लाल कुत्ता बड़ी दूर पर भूंक रहा था। वह शायद सबसे आगे जानेवाले चोर का पीछा कर रहा था। कुत्ते को बुला दे तो उसे बड़ी मदद मिलेगी। लेकिन चोरों को पता लग जाएगा कि हम उनका पीछा कर रहे हैं। देहाती युवकों को पहले से ही खबर कर देते तो उनकी मदद से चोरों को घेर कर पकड़ लेते। उसका और विक्रमकेसरी का अकेले निकलना बड़ी भूल हो गयी।

शिखिमुखी सोच ही रहा था कि इतने में चोरों में से एक बोला—"चलिए, चलिए। पुजारी साहब ने तीसरी आँख खोल दी है।" उसके तुरंत बाद चोर पेड़ों की आड़ में से जल्दी जल्दी सरोवर से थोड़ी दूर में स्थित आम के बगीचे की ओर दौड़ने लगे।

पुजारी का तीसरा नेत्र खोलना क्या है? आश्चर्य में आकर शिखिमुखी ने आमराई की ओर नज़र दौड़ायी। वहाँ पर एक पेड़ की बगल में छे-सात फ़ुट ऊँचाई तक एक ज्वाला प्रज्वलित होते और बुझते दिखायी दी। क्या वह पुजारी

की!" कहते शिखिमुखी ने घोष किया और अमराई में प्रज्वलित होनेवाली ज्वाला की तरफ़ दौड़ पड़ा।

ज्यों ही वह अमराई के निकट पहुंचा त्यों ही वह ज्वाला ग़ायब हो गयी। उसके तुरंत बाद किसी के बातचीत करने और चार-पाँच लोगों के पैदल चलने की आवाज़ शिखिमुखी के कानों में पड़ी। संभलकर वह उस आवाज़ की दिशा में क़दम बढ़ाने लगा। उसे इस बात का डर भी लगा कि पेड़ की आड़ में से दुश्मन उस पर शायद बर्छी फेंके! और हमला कर बैठे तो क्या होगा?"

का तीसरा नेत्र है? अद्भुत है! उसने बताया था कि वह एक हज़ार साल से शिथिलालय का पुजारी रहा है। अब वह तीसरा नेत्र खोलते-बंद कर रहा है! यह सब प्रवंचना है या सत्य है?...

शिखिमुखी इन विचारों में डूबता-उतरता रहा कि इतने में लाल कुत्ता चोट खाये की भांति ज़ोर से कराह उठा। उस आवाज़ के सुनते ही शिखीमुखी उग्र हो उठा। अपने प्यारे कुत्ते को चोरों में से किसीने घायल किया होगा। उस दुष्ट का खून पीना होगा! पुजारी के कलेजे में भाला भोंक दूंगा। "जय, शबर माता

शिखिमुखी को आगे वार्तालाप करते बढ़नेवालों की आवाज़ और स्पष्ट सुनाई देने लगी। उसने सोचा कि शायद वे लोग उसे देखकर ही निड़रता के साथ छाती फुलाये पैदल चलते जा रहे हैं। इस बीच चोरों में से एक ने ज़ोर से कहा—"वह कुत्ता नहीं, पिशाच है। पुजारी साहब को देखते ही उसके गाल चिपक गये हैं।"

वह लाल कुत्ते के बारे में ये शब्द कह रहा था। उन दुष्टों ने क्या उसे मार डाला? इस संदेह के पैदा होते

ही शिखिमुखी क्रोध से काँप उठा। उस हालत में वह भला-बुरा सोचे बिना गरज उठा–"बदमाशो, ठहर जाओ! मेरे भाले के वार से बचने की कोशिश करो!" यह कहते शिखिमुखी तेजी से उन पर टूट पड़ा। उसने चार पाँच क़दम बढ़ाया होगा, इतने में बायें पैर के नीचे की ज़मीन धँस गयी। वह गिरते गिरते संभल गया और दायें पैर के बल पर बायें पैर को निकालने की कोशिश करने लगा। हठात पैर में कोई रस्सी जैसी चीज़ कस गयी। दूसरे क्षण शिखिमुखी एक पेड़ की शाखा को पकड़कर एक पैर के बल पर औंधे लटकने लगा। भाग्यवश उसके हाथ का भाला मुट्ठी से खिसक न गया था।

शिखिमुखी कैसे खतरे में फँसा था, सोचने के पूर्व ही पेड़ों की आड़ में से उसका परिहास करते एक विकट हँसी सुनाई दी। उसके तुरंत बाद एक कंठ पूछ बैठा–"पुजारी साहब! मैंने सोचा था, यह शेर का शावक है, लेकिन खरगोश के बच्चे को हमने जाल में फँसाया। अब क्या करेंगे?"

"जल्दबाजी में आकर अभी उसका चमड़ा न निकालो। वह अभी हम से थोड़ी दूर पर है...और निकट आने से मेरी तीसरी आँख की ज्वाला से भस्म हो जाएगा।" यह कहते वह विकृत आकार पेड़ की आड़ में से बाहर आया। शिखिमुखी ने देखा, वह अपनी तीसरी आँख क़ो पल-भर में खोलता और बंद कर रहा है! वह विकृत आकार वाला क्या शिथिलालय का पुजारी तो नहीं?

शिखिमुखी ने सोचा। जब वह शिखिमुखी के घर आया था, उस वक़्त उसने ध्यान नहीं दिया था कि प्रज्वलित होनेवाली वह तीसरी आँख भी है! वह बादमाश भाले के सीध में आ जाय तो क्या

ही अच्छा हो! यह सोचते शिखिमुखी ने भाले को खूब फैला कर, पुजारी की तरफ़ झूलने के लिए अपने शरीर को पूरी ताकत लगा कर हिलाया। उसके प्रयत्न से परिचित तीन चोर शिखिमुखी के बाजू में आकर खड़े हो गये।

"ओहो! यह जंगली अपने हाथ की इस तीली से मुझे भोंकना चाहता है?" यह कहते पुजारी अट्टहास कर उठा–"अरे, छोकरे! अभी तक तुम्हारा घमण्ड दूर नहीं हुआ? जल्दी मत करो!" पल-भर चुप रहा, फिर तालियाँ बजाते बोला–"सर हिला सकोगे तो देखो! तुम्हारी शबर-बस्ती को मैंने अपने तीसरे नेत्र की आहुति कर डाली है।"

शिखिमुखी ने बड़ी कोशिश से अपने सर को घुमाकर बस्ती की ओर देखा। बस्ती में बड़ी बड़ी लपटें उठ रही हैं। वह उद्रेक से भर उठा। अपने पैर के बंधन को तोड़ने के विचार से थोड़ी देर तक छटपटाया।

फिर दांत पीसते बोला–"बदमाश! तुमने अपने सेवकों को भेजकर मेरी बस्ती को जलवा डाला। तुम्हारी मौत निश्चित है। थोड़ी देर में ही मेरी बस्ती के लोग आकर तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे!"

पुजारी ठठाकर हँस पड़ा–"तुम्हारी बस्ती के लोग यहाँ पर न आवें, इसीलिए तो मैंने बस्ती में आग लगवा दी है। सब कोई अपनी झोंपड़ी को बुझाने में लगे हुए हैं। सुनो, तुमको जान से छोड़ दूंगा, पर शर्त यह है कि उन ताड़-पत्रोंवाली थैली मुझे ला दो।" पुजारी ने कहा।

"ताड़-पत्रों को देना क्या, तुम्हारा सर काटकर विक्रमकेसरी को भेंट देनेवाला हूँ।" ये शब्द कहते शिखिमुखी ने खींचकर भाले को पुजारी की ओर फेंका। किन्तु

उसी वक़्त एक चोर पुजारी के आगे आया जिससे भाला उसके कंधे में चुभ गया। वह एक कराहट के साथ देखते देखते वहीं पर ठण्डा हो गया।

"यह कोई मूर्ख मालूम होता है। पर हिम्मतवर है। उसके पैर के बंधन को खोल गले में लगाकर खींच लाओ। मैं इन महावृक्षों पर से चलकर नज़दीक के रास्ते से जंगल में पहुँच जाऊँगा।" पुजारी पेड़ की ओट में चला गया।

पुजारी के चले जाते ही चोरों ने अपने दो अनुचरों के घावों में पट्टियाँ बांधी। घायलों में से एक ने कराहते हुए कहा– "देखो, भाइयो, अब हम अपने रास्ते चल देंगे। इस पुजारी के पीछे हमें अपनी जान देनी नहीं है!"

"मुँह बंद करो। कायर कहीं का! पुजारी साहब ने हमें जो सोना दिया है, उसकी बात भूल गये! हमने उस साहब के सामने क़सम खाई है! अपनी क़सम को हम्हीं तोड़ देंगे?" एक ने डांट बतायी।

"सारी आफ़तें इस जंगली के यहाँ आते ही शुरू हो गयी हैं। इसको साथ ले जाने की झंझट क्यों! साहब से कह देंगे कि वह भागना चाहता था, इसलिए मार डाला। मैं अपनी बर्छी इसकी छाती में भोंक दूंगा।" यह कहते चोरों में से एक मूँछों पर ताव देते उठ खड़ा हुआ और बर्छी निकाल कर भोंकने गया। परंतु शिखिमुखी ने अपने भाले से उसे ढकेल दिया और उस पर भाला घुसेड़ दिया। चोर की पीठ में भाला घुस गया। वह पीड़ा से कराह उठा। बाक़ी चोर गुस्से में अंधे हो चिल्ला उठे–"इसे मारो, काटो!" यह कहते सबने शिखिमुखी पर अपनी बर्छियाँ उठायीं।

(अभी है।)

मित्र-द्रोह

विक्रमार्क हताश न होकर पेड़ के पास लौट गया, पेड़ से लाश उतारकर, कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। उस वक्त शव में स्थित बेताल यों कहने लगा–"राजन्! यदि तुमने किसी को वचन दिया हो कि इस तरह श्रम उठाओगे तो अपनी बात रखने के लिए प्रयत्न करना प्रसंसनीय ही है। कृतवर्मा की तरह मित्र-द्रोह करना कदापि उचित नहीं। अपने श्रम को भूल जाने के लिए तुम्हें मैं कृतवर्मा की कहानी सुनाता हूँ, सुनो।"

बेताल यों कहने लगा–

प्राचीन काल में स्वर्णपुरि पर कुलपर्णी नामक राजा राज्य करता था। उसके यहाँ कुंतलकर्णी नामक मंत्री था। उस मंत्री की सहायता से राजा अपने नगर पर बड़ी दक्षता के साथ राज्य करता था।

वेताल कथाएँ

राजा का पुत्र सुदर्शन और मंत्री का पुत्र कृतवर्मा दोनों बचपन के मित्र थे। दोनों की उम्र बराबर की थी। सदा दोनों साथ-साथ घूमते; सोलह वर्ष की अवस्था तक दोनों ने एक ही गुरु के पास शिक्षा प्राप्त कर अपनी शिक्षा पूरी कर ली।

शिक्षा के समाप्त होते ही राजा के पुत्र सुदर्शन के मन में देशाटन करने की तीव्र इच्छा हुई। उसने अपने पिता के सामने यह इच्छा प्रकट की, तो उसने अनुमति नहीं दी, बल्कि देश की सीमा को पार करने से रोकने का ज़बर्दस्त इंतज़ाम किया।

राजा के अपने पुत्र को राज्य की सीमा से बाहर जाने से रोकने का एक कारण थाँ। सुदर्शन के बचपन में ही एक ज्योतिषी ने उसकी जन्म-कुंडली देखकर बताया था कि लड़के की सत्रह साल की उम्र पूरा होते समय एक खतरा है। उसके राजगद्दी पर बैठने तक राज्य छोड़कर बाहर न जावें। यदि राज्य से बाहर चला जाता है तो उसे राजगद्दी न मिलेगी। राजा ने यह बात अपने मन में ही रख ली थी, मंत्री से भी कभी बतायी न थी।

अपने पिता की आज्ञा का उद्देश्य न जानने के कारण सुदर्शन को बड़ी निराशा हुई। उसे छोड़कर अपने राज्य के हर कोई बाहर जा सकता है। लेकिन खुद वह नहीं जा सकता। यह बात राजकुमार के मन में खटकने लगी। राजकुमार ने अपने मित्र कृतवर्मा से इस संबन्ध में विचार-विमर्श किया और अंत में वे दोनों एक निर्णय पर पहुँचे। वह निर्णय था कि दोनों गुप्तरूप से परकाया-प्रवेश की विद्या सीखें।

दोनों ने एक सिद्ध से वह विद्या अच्छी तरह जान ली।

"अब तुम मेरे शरीर में प्रवेश करो। मैं तुम्हारे शरीर में प्रवेश करके, तुम्हारे

रूप में देशाटन करके लौटूंगा। तुम्हारे रूप में मुझे देख कोई न रोकेगा।" सुदर्शन ने कहा।

कृतवर्मा पहले राजकुमार का विचार सुनकर डर गया।

"हम दोनों राजा की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं। यह अपराध है। तो भी मैं तुम्हारे वास्ते स्वीकार करता हूँ। लेकिन मेरी एक शर्त है। किसी भी हालत में तुम छे महीने के अंदर लौट आओ और मेरे शरीर को मुझे देकर, तुम अपने शरीर को ले लो। शपथ करो कि तुम ऐसा ज़रूर करोगे।" कृतवर्मा ने सुदर्शन से कहा।

सुदर्शन ने शपथ ली। दोनों ने परस्पर शरीर बदले। सुदर्शन अपने मित्र कृतवर्मा के शरीर के साथ शिकार खेलने के बहाने रवाना होकर देशाटन करने गया। उसको किसीने नहीं रोका। कृतवर्मा राजकुमार के शरीर सहित अंतःपुर में जाकर ऐसा व्यवहार करने लगा, मानों वही राजकुमार है।

कुछ दिन बीत गये। शिकार से अपने पुत्र को न लौटते देख मंत्री बड़ी चिन्ता में पड़ गया। जंगल में बहुत खोज करायी, क़िन्तु उसकी लाश तक न मिली।

उन्हीं दिनों में अचानक राजा की मृत्यु हो गयी। राजकुमार के रूप में स्थित कृतवर्मा का पट्टाभिषेक हुआ। राज्य की सारी जिम्मेदारी मंत्री ही उठा रहा था। लेकिन अपने पुत्र के लिए मन ही मन चिन्ता के मारे घुलते वह कमज़ोर होता गया।

अपने पिता को अपने वास्ते चिन्ता करते और कमज़ोर होते देखकर भी कृतवर्मा कुछ नहीं कर पा रहा था। कई बार उसके मन में यह बताने की इच्छा हुई कि "मैं ही कृतवर्मा हूँ।" लेकिन बार-बार यह बात गले में ही अटक जाती थी।

अगर वह मंत्री से सच्ची बात बता दे तो खतरा है। सच्ची बात के मालूम होने पर मंत्री उसे पल-भर के लिए भी राजा बनकर न रहने देगा। धर्म की हानि होते देख वह सहन न कर सकेगा। गद्दी पर कोई न रहे तो अड़ोस-पड़ोस राजाओं के द्वारा राज्य के लिए खतरा है। इसीलिए वह अपने पिता के पास राजा का ही अभिनय करते उसे धीरज देता था कि कृतवर्मा के मन में देशाटन करने की बड़ी इच्छा थी, इसीलिए वह देशाटन करने गया है, जल्द ही वह लौट आएगा। इत्यादि।

वास्तव में कृतवर्मा भी बड़ी परेशानी के साथ राजकुमार का इंतज़ार कर रहा था। उसे हर रोज ऐसा लगता था मानों वह कांटों पर चल रहा है।

छे महीने बीत गये, पर राजकुमार वापस न आया।

मंत्री ने खाट पकड़ ली। जब उसकी मौत का समय निकट आया तब राजा के रूप में स्थित कृतवर्मा को अपने पास बुलाकर कहा—"बेटा! मेरी दृष्टि में, मेरे पुत्र और तुममें कोई फ़र्क़ नहीं। जब से मेरा पुत्र देशाटन करने गया है तब से मैं तुमको ही अपना पुत्र मानता आ रहा हूँ। आज तक मैंने राज्य का भार उठाया है। आज से यह भार तुम्हारे कंधों पर आएगा। बड़े राजा और मैंने भी धर्म की रक्षा में बहुत ध्यान दिया है। तुम भी अपने पिता की तरह किसी भी हालत में धर्म की रक्षा करने का मुझे वचन दो, तो मैं निश्चिन्त होकर सदा के लिए आँखें मूँद सकता हूँ।"

मंत्री की इच्छा के अनुसार कृतवर्मा ने क़सम खायी। मंत्री ने अपने प्राण छोड़ दिये।

कृतवर्मा ने अपने पिता के सामने जो क़सम खायी, उसका ठीक से पालन किया। उसके राज्यकाल में लोग अपने पुराने राजा,

अपने पुराने मंत्री को बड़ी आसानी से भूल गये।

राजकुमार लौटकर न आया।

एक साल बीत गया।

एक दिन कृतवर्मा शिकार खेलने गया। जंगल में एक तोता उड़कर आया और उसके कंधे पर बैठ गया। उसके व्यवहार से कृतवर्मा अचरज में आ गया। तब उस पक्षी ने यों कहा–

"मुझे पहचाना नहीं, दोस्त? मैं सुदर्शन हूँ। मुझे अपनी कहानी सुनाने का आज अच्छा मौक़ा मिला है। मैंने तुमको वचन दिया था कि छे महीने के अंदर लौट आऊँगा। लेकिन ज्यों-ज्यों मैं दुनिया को देखता गया त्यों-त्यों उसे और देखने की मेरी इच्छा हुई। हमारे राज्य में लौट आने की मेरी इच्छा न हुई। वास्तव में हमारे राज्य में क्या है? मैंने दुनिया में कई विचित्र बातें देखीं। इस प्रयत्न में मैं एक खतरे का शिकार हुआ। एक जंगल में मनुष्य को खानेवाला एक राक्षस मुझे पकड़कर अपनी गुफा में ले गया। मैं जानता था कि वह मुझे मारकर खा डालेगा। उस वक़्त मुझे इस तोते का शरीर मिला। मैं उसमें प्रवेश कर गया। तब मुझे इस दुनिया को देखने का और

अच्छा मौक़ा मिला। मैं तुम्हारे पास भी यह बताने के लिए नहीं आता कि तुम्हारे शरीर का नाश हो गया है। पर तुमसे माफ़ी मांगने के लिए आया हूँ। अब मुझे बिदा करो।"

ये बातें बताकर तोता उड़ गया।

बेताल यह कहानी सुनाकर बोला— "राजन्! कृतवर्मा ने अपने मित्र का शरीर उसे देकर उसने दूसरा शरीर क्यों न ढूँढा? ऐसा न करना क्या मित्र-द्रोह नहीं? कृतवर्मा के मित्र-द्रोह करने का कारण क्या है? राज्य का लोभ है या अपने शरीर को मित्र ने राक्षस का भोजन बनाया, इस बात का क्रोध है? इन सवालों का जवाब जानते हुए भी न दोगे, तुम्हारा सर टुकड़ा-टुकड़ा हो जाएगा।"

इस पर विक्रमादित्य ने यों जवाब दिया— "कृतवर्मा के सर मित्र-द्रोह का इल्ज़ाम लगाने का कोई कारण नहीं दीखता। किसी भी दृष्टि से देखे, सुदर्शन में राज्य के अधिकारी बनने की योग्यता नहीं है। यह बात पहले ज्योतिषी ने बतायी थी। इस बात को भूल भी जाए, उसमें देशाटन करने की जो तीव्र इच्छा है उसमें सहस्रांश भी राज्य करने की नहीं। कृतवर्मा में सचमुच राज्य पाने की इच्छा है तो वह बड़ी परेशानी से अपने मित्र का इंतज़ार न करता। इसके अलावा उसने अपने पिता के सामने जो क़सम खायी उसका पालन किया। अपने पिता के सामने जो क़सम खायी थी उसे अपने मित्र के प्रति बदलना संभव न था। उसका उद्देश्य अपने मित्र के साथ विश्वासघात करना कभी नहीं रहा है। इसलिए कृतवर्मा का, राजकुमार का शरीर उसे न देने में कोई दोष नहीं है।"

राजा ज्यों ही मौन हो गया, त्यों ही बेताल शव के साथ ग़ायब हो, पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

एक गाँव में एक किसान-दंपति था। उनके एक घर और थोड़े खेत भी थे। खेत से जो कुछ अनाज मिलता, उससे उनके दिन मजे में कट जाते थे। किसान की पत्नी बड़ी भुलक्कड थी। उस पल की बात दूसरे पल भूल जाती। इससे किसान को बड़ी तक़लीफ़ होती। तो भी उसे पत्नी से कुछ कहते नहीं बनता था। इसलिए सब कुछ सहन कर जाता था।

एक दिन किसान खेत में काम पर जाते हुए पत्नी से बोला—दुपहर तक खाना बनाकर खेत में ले आओ। यह कह कर मजदूरों को साथ ले किसान खेत पर चला गया। पत्नी ने सर हिलाकर स्वीकृति दी।

थोड़ी देर बाद पड़ोसिन आ बैठी और किसान की पत्नी से इधर-उधर की बातें करती रही। बातों में पड़कर किसान की पत्नी खेत पर खाना ले जाने की बात भूल गयी। दुपहर भी हो गयी, लेकिन बातें चलती रहीं, समाप्त नहीं हुईं।

पड़ोसिन के जाते ही किसान की पत्नी को अपने पति की कही हुई बात याद आयी। उसने जल्दी जल्दी खाना पकाना शुरू किया।

खेत पर किसान बड़ी देर तक अपनी पत्नी का इंतजार करता रहा। इंतजार करते करते वह थक गया, आखिर वह घर चला आया। उसने देखा, उसी वक़्त उसकी पत्नी चूल्हा जलाने लकड़ी ला रही है। किसान उस पर बरस पड़ा और लकड़ी लेकर पत्नी को चार जमा दी। फिर उसीने खुद खाना बनाया और भोजन करके खेत में चला गया। किसान की पत्नी रोते-रोते खाट पर लेट गयी।

दूसरे दिन सुबह किसान फिर खेत पर जाते हुए कल की तरह पत्नी से बोला कि

लक्ष्मीकांत 'सरस'

दुपहर तक खाना बनाकर खेत में ले आओ, नहीं तो हड्डी-पसली तोड़ डालूँगा।

लेकिन उस दिन भी पडोसिन ने आकर किसान की पत्नी को बातों में लगा रखी। उसके जाते जाते दुपहर हो गयी। तभी किसान की पत्नी को अपने पति की बात याद आयी। उसने सोचा–थोड़ी देर में उसका पति खेत से लौटेगा और हड्डी-पसली तोड़ बैठेगा। इस बीच में खाना पकाना भी संभव नहीं।

सोचते सोचते किसान की पत्नी को एक उपाय सूझा। उसने एक थाली में थोड़ा-सा चावल और दूसरी में तरकारी के टुकड़े धरकर, दोनों थालियाँ एक दूसरे पर रखकर बांध दीं और सर पर रखकर खेत की ओर रवाना हुई।

पत्नी को देर तक खेत पर न आते देख किसान ने घर चलने का निश्चय किया। उसी समय दूर पर पत्नी को आते देखा। वह नाराज़ था ही। इसलिए पत्नी के पास जाकर डांट बतायी–"इतनी देरी क्यों कर दी! अव्वल दर्जे की भुलक्कड़ हो। तुम्हारी चमड़ी उधेड़ देता हूँ।" यह कहते उसने न आव देखा और न ताव। दो चार चपत गाल पर जमा दी।

किसान की पत्नी ने अपने सर पर की पोटली नीचे रखकर सूर्य को नमस्कार करते हुए कहा–"हे सूर्य भगवान! मैं अपने पति की यातनाओं से तंग आ गयी हूँ। अगर मैं ही पतिव्रता हूँ तो यह खाना चावल और तरकारी कच्चे टुकड़े हो जायें।"

किसान ने पोटली खोलकर देखा। उसमें कच्चा चावल और तरकारी के टुकड़े मात्र थे। किसान अपनी पत्नी के भोलेपन पर ठठाकर हँस पड़ा और यह जान लिया कि उसको दण्ड देने से भी कोई फ़ायदा न होगा। उस दिन से फिर किसान ने कभी अपनी पत्नी को नहीं पीटा।

अत्याचार

कांपिल्य नगर के बाहर, जंगल के समीप में एक बूढ़ी छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर रहा करती थी। उसके अपना कहनेवाला कोई न था। मेहनत करके वह अपनी जीविका चलाती थी। मेहनत करने की उम्र भी ढल गयी थी। जो कुछ धन इकट्ठा किया था उसी से किसी न किसी तरह दिन काट रही थी। एक दिन कई चोर उसके पास आये, बड़ी रक़म देते हुए बोले कि इस धन को लेकर उन्हें खाना बनाकर खिलावें।

उस दिन से लेकर चोर बड़ी रात गये बूढ़ी की झोंपड़ी में लौटते, वह जो कुछ खाना खिलाती, खाकर जंगल में फिर चले जाते। यह क्रम बराबर चलता रहा। उन दिनों में बूढ़ी ने सुना कि नगर में चोरियाँ दिन ब दिन बढ़ती जा रही हैं। फिर भी बूढ़ी मौन रह गयी। क्योंकि चोरों के उपकार से बिना मेहनत के बूढ़ी के दिन मज़े में कट रहे थे। वे भोजन के मद्दे जो रुपये देते थे उनमें बड़ी रक़म बच जाती थी। इसके अलावा किसी कोने में रहनेवाली उस बूढ़ी से चोरों के बारे में पूछनेवाला भी कोई न था।

कांपिल्य का राजा सत्यवर्मा बड़ा पराक्रमी था। यों तो उसके तीन रानियाँ थीं, लेकिन संतान के नाम पर केवल एक लड़की थी। उसका नाम कनकसुंदरी था। तीन माताओं के हाथों में वह लाड़-प्यार से पली। देखने में भी वह रंभा-जैसी सुंदर थी।

सब देशों के राजाओं और राजकुमारों को जब यह समाचार मिला कि सत्यवर्मा अपनी पुत्री का विवाह करना चाहते हैं तब दूर-दूर के राजाओं ने उससे विवाह करना चाहा। लेकिन राजकुमारी ने उनसे विवाह करने से इनकार कर दिया। इस प्रकार

राजेन्द्र मोहन

तिरस्कृत लोगों में सुनीर देश का राजा चंडवर्मा भी एक था। अन्य राजाओं की भांति राजकुमारी के तिरस्कार को स्वीकार न करके उसने शपथ ली कि वह उसके साथ शादी करके ही रहेगा। उसके पास सैनिक-बल होता तो चंडवर्मा कांपिल्य नगर पर जरूर हमला कर बैठता। लेकिन यह सपने में भी संभव न था। सत्यवर्मा घड़ी-भर में चंडवर्मा को तथा उसके सैनिक बल को मटियामेट कर सकता है। इसलिए चंडवर्मा को दूसरा उपाय सोचना पड़ा।

कनकसुंदरी के साथ एक दूसरा युवक भी प्रेम करता था। वह कटक देश का युवराज महीधर था। वह गुप्त रूप से सभी देशों का भ्रमण करते कांपिल्य नगर में आया। वहाँ पर एक उद्यान में राजकुमारी को देख उसके अनुपम सौन्दर्य पर चकित हो गया। उसी समय राजकुमारी ने उसे देखा और अपने मन में सोचा कि स्वयंवर में आये हुए सभी लोगों में यह युवक कितना सुंदर है।

राजकुमारी जब अपनी सखियों के साथ चली गयी तब महीधर उसीके बारे में सोचते अन्यमनस्क हो बूढ़ी की झोंपड़ी की तरफ़ चला आया। उसे बड़ी प्यास लगी थी, इसलिए झोंपड़ी में पहुँच कर बूढ़ी से पानी माँगा। उसी वक़्त बूढ़ी ने चोरों के लिए खाना बनाना शुरू किया था।

बूढ़ी के हाथ का पानी पीकर महीधर ने पूछा–"नानीजी! इस झोंपड़ी में तुम्हारे साथ और भी कई लोग हैं क्या? लगता है, तुम भारी रसोई बना रही हो।"

"मेरा अपना कौन है बेटा? यह सारी रसोई एक दल के लिए है। एक महीने से वे लोग मेरे हाथ खाना पकवाकर खाते आ रहे हैं। आज से उनका पिंड छूट जाएगा। वे जिस काम के लिए आये थे शायद आज पूरा होगा।" बूढ़ी ने कहा।

"उस दल के लोग कौन हैं? किस देश के रहनेवाले हैं? वे कहाँ रहते हैं?" महीधर ने एक साथ कई प्रश्न पूछे।

"मुझसे उन लोगों ने यह सारी बातें नहीं बतायीं, बेटा! जब से ये लोग आये हैं, कहते थे कि शहर में चोरियाँ बढ़ती जा रही हैं। शायद यह काम इन चोरों का हो।" बूढ़ी ने कहा।

महीधर ने सोचा कि इस दल की ख़बर लेनी है। उसने बड़ी विनय के साथ बूढ़ी से पूछा—"नानी! आज रात को मुझे भी इस झोंपड़ी में रहने दोगी?"

"बाप रे बाप! चोरों को पता चले तो तुम को और मुझे भी मार डालेंगे। वे बड़ी रात गये लौटते हैं। इस बीच में खाना बनाकर तुमको खिला सकनी हूँ। लेकिन उनके लौटने तक तुम्हें यहाँ न रहना चाहिए।" बूढ़ी ने समझाया।

महीधर थोड़ी देर बूढ़ी से गपशप करता रहा, फिर उसके हाथ का भोजन करके बूढ़ी से बोला—"नानी! अब मैं जाता हूँ, फिर मिलूँगा।" बूढ़ी से विदा लेकर महीधर चला गया।

परंतु महीधर दूर नहीं गया। बूढ़ी की झोंपड़ी के सामने जो पेड़ थे, उनमें एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ा और डालों के बीच में इस तरह बैठ गया जिससे वह बिल्कुल दिखाई न पड़े।

आधी रात के बाद दस आदमी घोड़ों पर झोंपड़ी के पास आये। उनके साथ लूटा हुआ माल दिखाई न देता था। हाँ, एक घोड़े पर एक बड़ी गठरी थी और दूसरे पर एक मटका था।

चोर जब बूढ़ी की झोंपड़ी में गये, तब वे अपने साथ मटका ले गये, लेकिन गठरी घोड़े पर ही छोड़ गये थे। जल्द ही झोंपड़ी में से चोरों के क़हकहे और हँसी-टठ्ठे सुनाई दिये। लगता था कि अपने कार्य के

समाप्त होने की खुशी में वे खूब शराब पिये जा रहे हैं।

महीधर पेड़ से उतर आया, घोड़े की पीठ पर की गठरी को छूकर देखा। ऐसा मालूम हुआ कि उस गठरी में कोई आदमी है। उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। जल्दी-जल्दी उसने गठरी खोली, उसमें मज़बूत रस्सियों से एक औरत बंधी हुई थी। वह और कोई नहीं, राजकुमारी कनकसुंदरी थी। महीधर ने जल्दी-जल्दी उसके बंधन खोल दिये और उसे समझाया—"चोरों के चले जाने तक इन झाड़ियों के पीछे छुप जाओ। इसके बाद झोंपड़ी में चली जाओ। नानी अच्छी है। सबेरा होने के पहले मैं फिर लौटकर, तुमको राजमहल में पहुँचा दूंगा।"

राजकुमारी घबड़ानेवाली न थी। वह रोयी-चिल्लायी नहीं; बात तक नहीं की। उस युवक के कहे अनुसार वह झाड़ियों की ओट में चली गयी। इस बीच महीधर घोड़े की पीठ पर ख़ुद गठरी बनाकर चुपचाप पड़ा रहा।

बड़ी देर बाद चोर लोटते झोंपड़ी से बाहर आये। अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो जंगल के रास्ते से बहुत दूर चले गये और वहाँ एक घर के सामने पहुँचे। चोरों ने गठरी को बड़ी होशियारी से एक कोने में रखा, फिर लेटकर खुर्राटे लेते हुए सोने लगे।

महीधर को जब मालूम हुआ कि सभी चोर गहरी नींद में हैं तब वह गठरी से बाहर आया, हर एक चोर के हाथ-पैर बांध दिये; हर एक को एक-एक घोड़े पर आड़े लिटाकर वह एक घोड़े पर सवार हुआ; सभी चोरों को राजमहल में पहुँचा दिया। तब तक सबेरा हो चुका था। इसके पहले ही राजकुमारी को उठा ले जाने की बात राजमहल में फैल गयी थी, इसलिए सब लोग परेशान थे।

"ये ही राजकुमारी को उठा ले जानेवाले चोर हैं। राजकुमारी एक जगह सुरक्षित है। मैं अभी उसको ले आता हूँ।" यह कहते महीधर घोड़े पर सवार हो बूढ़ी की झोंपड़ी तक पहुँचा। उसका इंतज़ार करते बूढ़ी और राजकुमारी जाग रही थीं।

सत्यवर्मा ने अपनी पुत्री को बचानेवाले महीधर के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। परन्तु जब उसको यह मालूम हुआ कि यह कटक देश का युवराज है और वेष बदल कर घूम रहा है तब उसने सोचा, उसको अपना दामाद बनावे तो बहुत ही अच्छा होगा। यह सोचकर उसने सार्थक-भरी दृष्टि से राजकुमारी को देखा और समझा कि वह भी महीधर से मन ही मन प्रेम करती है।

चोरों के अपराध के संबन्ध में जांच हुई तो पता चला कि वे केवल चोर ही नहीं, बल्कि चंडवर्मा के द्वारा कनकसुंदरी को उठा लाने के लिए भेजे गुप्तचर हैं। यह भी पता चला कि उन लोगों ने छोटी-मोटी चोरियाँ करके साधारण चोर कहलाने का भ्रम पैदा करना चाहा, जिससे किसी को चंडवर्मा पर शंका न हो। आखिर इन्साफ़ हुआ और यह फ़ैसला दिया गया कि सभी चोरों को मौत की सज़ा दी जाए।

सत्यवर्मा ने सभा-भवन में महीधर का सम्मान किया और अपनी बेटी देकर विवाह करने की घोषणा की। महीधर ने जब राजा से यह निवेदन किया कि उसके साथ सम्मान पानेवाली एक बूढ़ी औरत भी है। इस पर राजा ने उसे कई इनाम दिये।

उसी दिन सत्यवर्मा ने अपनी फ़ौज को लेकर सुनीर देश पर हमला किया। युद्ध में चंडवर्मा को हराकर बंदी बनाया, सबके देखते उसका सर कटवा डाला।

राजधानी में लौटने पर सत्यवर्मा ने महीधर और कनकसुंदरी का विवाह बड़े वैभव के साथ किया।

नाम-परिवर्तन

एक गाँव में एक गरीबन के एक लड़का था। उसका नाम गोवर्धन था। गोवर्धन का पिता गरीबी से परेशान होकर परिवार के बोझ से छुटकारा पाने के लिए एक दिन घर से चुपचाप चला गया। उस वक़्त गोवर्द्धन नन्हा बच्चा था। गोवर्द्धन को बड़ी तक़लीफ़ उठाकर माँ ने ही पाला-पोसा और बड़ा किया। माँ-बेटे बहुत मेहनत करते, पर गुज़ारा होना मुश्किल मालूम होता था। इसके साथ ही गोवर्द्धन के दिल में शादी करने की इच्छा पैदा हुई। वह ग़रीब था, इसलिए अड़ोस-पड़ोस गाँववाले भी अपनी लड़की देने को तैयार न हुए। सब कोई उसे नालायक़ समझते थे। इस हालत में गोवर्द्धन एक दिन अपनी माँ से कहे बिना घर से निकल पड़ा।

गोवर्द्धन चलते-चलते एक नगर में चहुँचा। उसके पास जो कुछ पैसे थे उन्हें देकर दो लड्डू खरीदे और नगर के बाहर एक तालाब के किनारे पहुँचा। वहाँ पर राजा के धोबी कपड़ों की गठरियाँ लादे आ पहुँचे। गोवर्द्धन उनको देखते अपने लड्डू निकालकर खाते हुए धोबियों से बोला—

"क्या तुम लोग भी लड्डू लाओगे?"

"कहां से?" धोबियों ने पूछा।

"नहीं जानते? पड़ोसी गाँव में ज़मीन्दार के एक लड़का हुआ है। इसलिए सब को लड्डू बाँट रहे हैं।" गोवर्द्धन ने कहा।

"तब तो हम भी जाकर लड्डू ले आएँगे। हमारी गठरियाँ देखते रहो।" धोबियों ने गोवर्द्धन से कहा।

"अच्छा, लेकिन जल्दी आ जाना। मेरे कई काम पड़े हैं।" गोवर्द्धन ने कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है, बाबू साहब!" धोबियों ने फिर पूछा।

"बवण्डर है।" गोवर्द्धन ने कहा।

शोभाकांत दास

धोबी सब चले गये। आँखों से उनके ओझल होते ही, गोवर्द्धन कपड़ों की गठरियाँ लेकर चंपत हो गया।

धोबियों ने ज़मीन्दार की बड़ी खोज की, उस का कहीं पता न चला तो सोचा कि बवंडर ने हमें धोखा दिया है। लौटकर देखा तो कपड़ों की गठरियाँ ग़ायब थीं। राजा के पास जाकर सबने शिकायत की कि बवंडर कपड़े उठा ले गया है।

राजा ने उनकी शिकायत सुनकर कहा– "बवंडर कपड़ों को उठा ले गया है, तो इस में तुम लोगों का दोष क्या है? चलो, तुम को माफ़ कर देता हूँ।"

इस बीच गोवर्द्धन बहुत दूर निकल गया। उसने गठरी में से राजा की पोशाकें निकालीं, उनको पहनकर बाक़ी कपड़ों को छोड़ दिया और फिर आगे बढ़ा।

रास्ते में गोवर्द्धन ने देखा, एक सौदागर कई घोड़ों को बेचने ले जा रहा है। गोवर्द्धन ने उसको रोका और घोड़ों में से एक बढ़िया अरबी घोड़े का चुनाव कर पूछा–"इसका क्या दाम है?"

"यह अरबी नस्ल का घोड़ा है। इसका दाम पांच सौ रुपये होगा।" सौदागर ने जवाब दिया।

"यह तो पांच सौ रुपयों का मालूम होता है, पर घोड़े पर सवार करके जांच लूँ तभी रुपये दूंगा।" गोवर्द्धन ने कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है?" सौदागर ने पूछा।

"मेरा नाम कर्जदार है।" गोवर्द्धन ने कहा।

गोवर्द्धन ने घोड़े पर सवार हो चाबुक लगायी। घोड़ा हवा से बात करने लगा। बड़ी देर तक सौदागर इंतज़ार करता रहा। न लौटते देख उसने सोचा कि धोखा खाया है। इस पर वह रोने-पीटने लगा। रास्ते

पर जानेवाले मुसाफ़िरों ने उससे पूछा– "भाई, रोते क्यों हो?"

"कर्जदार मेरा घोड़ा उड़ा ले गया है।" सौदागर ने जवाब दिया।

"कर्जदार घोड़ा न ले जाएगा तो करेगा क्या?" यह कहकर सब अपनी राह चले गये।

गोवर्द्धन घोड़े पर सवार हो और आगे बढ़ा। रास्ते में एक बड़ी नहर पड़ी। उसे पार करने के लिए किनारे पर एक बूढ़ी और एक युवती बैठी थीं। एक छोटी-सी डिंगी थी, लेकिन उस पार एक खूंटे से बंधी थी। परंतु डिंगीवाले का कहीं पता न था।

गोवर्द्धन ने बूढ़ी से बात की और उसकी हालत जान ली। तब सहानुभूति दिखाते बोला–"मैं तुम दोनों को नहर पार करा दूंगा। पहले तुम्हारी पोती को उस पार पहुँचा कर, फिर तुमको ले जाऊँगा।"

"तुम्हारा नाम क्या है, बेटा?" बूढ़ी ने पूछा।

"उसका पति है।" गोवर्द्धन ने जवाब दिया।

इसके बाद युवती को घोड़े पर बिठाकर गोवर्द्धन ने नहर पार किया और पीछे लौटे बिना घोड़े को दौड़ाते चला गया।

बूढ़ी ने देखा कि घुड़सवार उसकी पोती को भगा ले जा रहा है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी–"मेरी पोती को उसका पति भगा ले गया।" बूढ़ी की बातें सुनकर सब हँसकर रह गये।

गोवर्द्धन ने अपने गाँव पहुँच कर उस युवती से शादी की और उसने जो दग़ा किया, उसकी सारी कहानी गाँव-वालों को सुनायी। गाँव-वाले उसकी होशियारी पर खुश हुए और सबने मिलकर उसकी जीविका का अच्छा इंतज़ाम किया। गोवर्द्धन बड़े आराम से अपने दिन बिताने लगा।

बेवकूफ़ नवाब

एक बार एक नवाब अपने दल-बल के साथ शहर के बाहर सैर करने निकला। थोड़ी दूर चलने के बाद नवाब ने देखा, एक युवक बरगद के पेड़ पर चढ़कर, उसके पत्ते तोड़ रहा है।

नवाब ने तुरंत उस युवक को पेड़ से उतर आने का आदेश दिया और पूछा– "तुम कौन हो? उस पेड़ के पत्ते क्यों तोड़ रहे हो?"

"मैं ग़रीब ब्राह्मण हूं। खाने के लिए पत्तल सीने के लिए ये पत्ते तोड़ रहा हूँ।" युवक ने जवाब दिया।

नवाब का यक़ीन था कि हर ब्राह्मण कविता कर सकता है। इसलिए युवक से कहा–"तुम ब्राह्मण के लड़के हो तो मुझ पर कविता बनाकर सुनाओ तो सही!"

ब्राह्मण युवक पढ़ना-लिखना भी बहुत कम जानता था। कविता करना बेचारा क्या जाने! उसने सोचा, अगर यह कहे कि कविता करना मालूम नहीं, तो नवाब मार डालेगा। आख़िर हिम्मत करके पूछा–"साहब! आप अपना नाम बता दीजिये।"

नवाब ने कहा–"बुलबुल खाँ है।"

युवक ने निड़रता के साथ एक दण्डक का पाठ करना शुरू किया–"हे बुलबुल खाँ! ओहो बुलबुल खाँ! हमारे बुलबुल खाँ! आहा बुलबुल खाँ! शहबाश बुलबुल खाँ! शुक्रिया बुलबुल खाँ!"

हर एक चरण में अपने नाम का उल्लेख होते देख नवाब खुश हो गया और अपने अनुचर कासीम खाँ को आदेश दिया कि उस युवक को सोने की अशर्फ़ियों की एक थैली इनाम दे। इसके बाद फिर वह अपने दल के साथ आगे बढ़ा।

युवक वह थैली लेकर घर पहुँचा। सारी कहानी अपनी माँ को सुनायी। अपने पुत्र की कविता पर माँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी और अपने बेटे के इस कार्य को बढ़ा-चढ़ाकर अड़ोस-पड़ोस में सब को सुनाया।

उस युवक के पड़ोस में रामशास्त्री नामक एक पंडित रहता था। उसकी पत्नी ने युवक की कहानी सुनकर अपने पति से कहा—"आप जमाने से कविता करते आ रहे हैं, लेकिन फ़ायदा क्या रहा? पड़ोसी लड़का नवाब पर कविता सुनाकर थैली भर धन लाया है।"

"ऐसी बात हो तो मैं भी नवाब के दर्शन कर, उन पर कविता सुनाकर, धन ले आऊँगा।" रामशास्त्री ने कहा।

दूसरे दिन सुबह रामशास्त्री नवाब के दरबार में गया। पहरेदारों से कहा—"मैं ब्राह्मण हूँ, कविता कर सकता हूँ। नवाब पर कविता कर उनको सुनाने आया हूँ।" नवाब ने रामशास्त्री को दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया।

रामशास्त्री ने नवाब को झुककर सलाम किया। उस पर एक सुन्दर और रस भरी कविता सुनायी। कविता के अंत में नवाब का संबोधन किया।

नवाब को कविता से प्रेम जरूर है, पर उसे समझने की क्षमता नहीं है ।

"अरे, यह कैसी कविता है ? कल एक जवान ने मुझ पर कविता सुनायी, बात बात पर मेरा नाम लिया । तुमने तो मेरा नाम आखिर में डाल दिया जैसे जूते फेंके जाते हैं आखिर में । जाओ, चले जाओ ।" कविता सुनकर नवाब चिल्ला उठा ।

रामशास्त्री निराश हो घर चला गया ।

* * *

एक बार नवाब अपने दल के साथ घूमते-घामते चमेलीपुर नामक गाँव पहुँचा । गाँव के पटेल और पटवारी ने नवाब के परिवार के ठहरने और खाने का अच्छा इंतजाम किया ।

नवाब और उसके अनुचरों के खाने और आराम करने के बाद पटेल और पटवारी उनके दर्शन करने निकले ।

रास्ते में पटवारी ने पटेल से कहा— "पटेल साहब, देखो, हम नहीं जानते कि नवाब यहाँ कितने दिन डेरा डालनेवाले हैं । एक जून का खर्च इतना हुआ कि हमारा गाँव यह बोझ उठा नहीं पा रहा है ! एक सप्ताह तक रहेंगे तो हमारी क्या दुर्दशा होगी ? हम मुँह खोलकर अपनी तक़लीफ़ भी नहीं बता सकते !"

"हाँ, हाँ। मैं भी यही सोचता हूँ! मैंने एक उपाय सोचा है। अगर वह चल गया तो समझ लो, हमारा पिंड ही छूट गया!" पटेल ने जवाब दिया।

दोनों नवाब के डेरे में पहुँचकर उचित आसनों पर बैठे।

"क्यों पटेल साहब! आपके गाँव का क्या हाल है? कोई कमी तो नहीं है न?" नवाब ने पूछा।

"क्या बताऊँ, हुजूर! आपकी मेहर-बानी से कोई कमी नहीं है। मवेशियाँ खूब हैं! लेकिन कमी यह है, बस, हमारे पूरे गाँव के लिए एक ही तालाब है! उसी का पानी सबको पीना पड़ता है। कारण मैं बता नहीं सकता! उस तालाब का पानी पीकर भैंस का दही खाने से जाड़ा देकर ऐसा बुखार आता है, कुछ न कहिये! कई लोग मरते भी हैं! समझ में नहीं आता कि इस गाँव को छोड़ कहाँ जान बचावे! इसीसे परेशान हैं!" पटेल ने समझाया।

तुरंत नवाब घबरा गया। उसने अपने दल के साथ उसी तालाब का पानी पिया और भैंस का दही खाया था।

"अरे कासीम खाँ। हमें तुरंत यहाँ से भागना है। डेरे सब उठवा दो।" नवाब ने अपने अनुचर को आज्ञा दी।

पटेल की चाल खूब चली। उसी शाम को पटेल और पटवारी नवाब को बहुत दूर तक भिजवा कर बड़ी खुशी से वापस लौटे।

नवाब अपनी जिंदगी-भर उस चमेलीपुर के तालाब, और भैंसे के दही को भूल न सका। वह किसी से नाराज़ हो जाता तो उसे यही सज़ा देता कि वह आदमी चमेलीपुर के तालाब का पानी पीकर, वहाँ की भैंस का दही खावे! ऐसे लोग नवाब के खर्चे से कुछ समय तक वह सज़ा भोग कर, खूब मोटे-ताज़े होते और सुखी रहते।

सच्चा इन्साफ़

एक गांव में माधव और जयराम नामक दो किसान रहते थे। दोनों अच्छे दोस्त थे। माधव रहम दिल और दानशील था। किसी को तकलीफ़ों में फंसा हुआ देखता तो उसकी मदद करता। जयराम कंजूस था। दूसरों की मदद करना वह जानता ही न था। दूसरों की तरक्की को देख मन ही मन जलता था।

दोनों के खेत पास-पास थे। एक दिन वे दोनों खेतों की मेंड़ों पर बैठकर बातचीत कर रहे थे। तब एक ग़रीब आदमी ने आकर बड़ी दीनता से पूछा–"भाइयो, मैं कई बाल-बच्चोंवाला आदमी हूँ। मेरी औरत बीमार है। इलाज कराना है। पास में पैसे नहीं। थोड़ी मदद कीजियेगा तो भगवान आपका भला करेगा।"

"तुम जैसे लोगों को पैसे देते चलें तो हमारी भी वही हालत होगी। जाओ, काम-वाम तो करो। भीख मांगते लज्जा नहीं होती।" जयराम ने डांट बतायी।

उस आदमी ने माधव की आंखों में बड़ी दीनता से देखा। माधव का दिल पसीज उठा। उसने जेब में से दस रुपये का नोट निकालकर उसके हाथ में रखते हुए कहा–"जाओ भैया! जल्दी तुम अपनी औरत का इलाज कराओ।"

ग़रीब आदमी को माधव का रुपये देना जयराम को बुरा लगा। उसने सोचा कि उसका अपमान करने के लिए ही माधव ने उसे रुपये दिया है। जयराम ने उसी वक्त मन में इरादा कर लिया कि मौक़ा मिले तो माधव पर बदला लेकर उसका अपमान करना है।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन माधव खेत पर पहुँचा तो देखा कि नहर में एक

अमरनाथ

तो अब माधव गाँव में मुँह दिखाने लायक़ न रहेगा।"

जयराम ने उसी दिन शाम को मुखिया के घर जाकर शिकायत की—"महाशय, कल रात को मेरे बछड़े को कोई उठा ले गया है। आज माधव के घर गया तो वहाँ पर मुझे एक बछड़ा दिखाई दिया। वह मेरे बछड़े जैसा है। मुझे शक है कि माधव ने ही मेरे बछड़े की चोरी की है। उसके तो गायें हैं ही नहीं, तो बछड़ा कहाँ से आया? आप फ़ैसला कीजिये।"

तुरंत मुखिये ने माधव को बछड़े ले आने की ख़बर भेजी। ख़बर के मिलते ही माधव बछड़े को साथ लेकर आ पहुँचा। वहाँ पर अपने दोस्त जयराम को देख उसे आश्चर्य हुआ।

बछड़ा बहता आ रहा है। माधव ने उतरकर बछड़े को निकाला और उसे अपने हाथों में उठाकर घर ले गया। उस वक़्त वहाँ पर कोई न था।

माधव की पत्नी बछड़े को देख बहुत खुश हुई। उसे खिलाने-पिलाने लगी।

दूसरे दिन जयराम ने माधव के घर जाकर बछड़े को देखा। बछड़े के बारे में कुछ पूछ-ताछ किये बिना तुरंत घर चला गया और सोचने लगा—"माधव के तो गायें नहीं हैं, बछड़ा कहाँ से आया? कहीं उसने ज़रूर चोरी की होगी। इस चोरी के बारे में गाँव के मुखिये से शिकायत करे

"क्यों जी, माधव! बछड़ा लाये हो न? तुम्हारे घर में गायें हैं?" मुखिया ने पूछा।

"घर में गायें नहीं हैं जी!" माधव ने जवाब दिया।

"गायें नहीं हैं? तो बछड़ा कैसे आया?" मुखिया ने फिर पूछा।

"नहर में यह बछड़ा बहता जा रहा था, भाग्य से मुझे मिला है। घर लाकर

में पालता हूँ।" माधव ने सच्ची बात बता दी।

जयराम ने बीच ही में टोकते हुए कहा—"क्यों माधव! मुखिया के सामने झूठ क्यों बोलते हो? तुमने मेरे बछड़े की चोरी नहीं की?"

जयराम के मुँह से यह बात सुनकर माधव अवाक् रह गया।

मुखिया ने जयराम को शांत किया और कहा—"माधव, नहर में बछड़े को बहते आते हुए किसीने देखा हो तो यक़ीन किया जा सकता है। नहीं तो कैसे विश्वास करें? जयराम के तो गायें हैं। वे कहते हैं कि उनका बछड़ा खो गया है; तुम क्या जवाब देते हो?"

"आपकी मर्ज़ी! मैंने सच्ची बात बता दी है। जब मुझे यह बछड़ा नहर में मिला तब वहाँ कोई न था। मैं गवाही कैसे दिला सकता हूँ।" माधव ने कहा।

मुखिया थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर बोला—"जयराम जी! इस बछड़े की माँ को ले आओ।"

जयराम घर जाकर अपनी गायों में से एक को हाँक ले आया।

मुखिया ने बछड़े को गाय के पास भेजा। लेकिन उसने जाकर न दूध पिया, न बछड़े ने गाय की ओर आँख उठाकर देखा।

मुखिया ने जयराम की तरफ़ मुड़कर कहा—"यह गाय इस बछड़े की माँ नहीं है। माधव का कहना ही सच साबित हुआ। उनका अपमान करने के लिए तुमने उन पर दोषारोपण किया। इसलिए मैं तुमको जुर्माना लगा देता हूँ और यह बछड़ा माधव को देता हूँ।"

माधव बछड़े को लेकर घर लौटा। जयराम का गाँववालों के बीच बड़ा अपमान हुआ।

वीरबल की अक़्लमंदी

अकबर की भरी सभा में एक बार बादशाह अकबर ने वीरबल से पूछा– "वीरबल, दुनिया के सब से ज्यादा ईमानदार जानवर और बेईमान जानवर को देखने की मेरे मन में बड़ी इच्छा है! लाकर मुझे दिखा सकते हो?"

वीरबल बहुत दिनों से अपने दामाद को अच्छा सबक़ सिखाना चाहता था। वह वीरबल के घर में ही रहता था और सब तरह की मदद पाकर भी असंतुष्ट रहता था। इसलिए बड़े इंतज़ार के बाद अच्छा मौक़ा पाकर अपने पालतू कुत्ते को साथ लेकर दरबार में जाते उसने अपने दामाद को भी बुलाया।

बादशाह ने वीरबल को देख पूछा– "वीरबल, मैंने तुमसे ईमानदार और बेईमानदार जानवर को लाने को कहा था, क्या ले आये हो?"

"जी हाँ, हुज़ूर! यह मेरा कुत्ता है! ईमानदारी में इससे बढ़कर दूसरा जानवर दुनियाँ भर में ढूंढ़ने पर भी न मिलेगा। थोड़ा खाना खिला देता हूँ तो पूँछ हिलाते, अपनी खुशी प्रकट करता है। उसे चाहे गालियाँ दूँ, पीटूं, मेरे प्रति उसका विश्वास घटेगा नहीं।" वीरबल ने जवाब दिया।

"अच्छी बात है! लेकिन बेईमान जानवर कहाँ?" बादशाह ने पूछा।

"देखिये, मेरे दामाद को! यही बेईमान जानवर है! इसकी जितनी भी मदद करूँ, तृप्ति नहीं, संतोष भी नहीं। और माँगता रहता है।" वीरबल ने जवाब दिया।

"ऐसी बात है? तब तो तुरंत मैं उसका सर कटवाये देता हूँ। मेरे राज्य में बेईमानों की जरूरत नहीं है।" वीरबल की परीक्षा लेने अकबर ने कहा।

देवेन्द्रकुमार

"जल्दबाज़ी न कीजिये, हुज़ूर! हम सब भी तो दामाद हैं! अविश्वास सब दामादों में होता है!" बीरबल ने कहा।

अकबर बीरबल का जवाब सुनकर बहुत खुश हुआ।

* * *

कभी कभी बीरबल का हास्य सीमा पार कर जाता था। एक दिन उसने बादशाह से पूछा—"सरकार! सूरज रोज़ पश्चिम में क्यों छिपता है?"

"ऐसे सवाल किसी मूर्ख से जाकर पूछो।" बादशाह ने गुस्से में आकर जवाब दिया।

"इसलिए तो मैंने आप से पूछा!" झट बीरबल ने कहा। अकबर इस बात पर नाराज़ नहीं हुआ, बल्कि हँसकर रह गया।

* * *

एक दिन बादशाह ने दरबारियों से पूछा—"सत्ताईस में नौ निकाल देने से क्या बचता है?" सब ने एक साथ विद्यार्थियों की तरह जवाब दिया—"अट्ठारह!"

अकबर ने बीरबल की ओर देखा।

"सत्ताईस में नौ निकाल देने से क्या बचता है, सरकार? कुछ नहीं बचेगा।" बीरबल ने कहा।

सब लोग आश्चर्य में आ गये।

"कैसे कह सकते हो कि कुछ नहीं बचेगा?" अकबर ने फिर पूछा।

"एक साल के सत्ताईस नक्षत्र होते हैं। उनमें बरसात के नौ नक्षत्र निकाल दें, तो बाक़ी के रहने या न रहने से फ़ायदा क्या रहा?" बीरबल ने अपनी चालाकी दर्शायी।

बादशाह ने उसे अच्छा इनाम दिया।

* * *

एक दिन दरबार में, अकबर के एक मंत्री अबुल फज़ल ने बीरबल से कहा—"बीरबल, बादशाह तुमको राज्य-भर के कुत्तों का अधिकारी बनाना चाहते हैं।"

"शहबाश ! तब मैं आप पर अधिकार चला सकता हूँ।" बिना झिझक के बीरबल बोल उठा।

इस बात पर बादशाह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। इसके बाद फिर कभी अबुल फज़ल ने बीरबल को न छेड़ा।

* * *

अकबर ने एक बार बड़ी खुशी में बीरबल को एक जागीर देने का वचन दिया, पर अपने वचन का पालन नहीं किया। बीरबल जब भी याद दिलाता, बादशाह कंधे उछाल देता।

एक बार बादशाह ने बीरबल से पूछा—"बीरबल, ऊँट की गर्दन में इतनी मरोड क्यों है? इसका कोई कारण तो होगा?"

"क्या होगा, हुज़ूर? उसने किसी को जागीर देने का वचन दिया होगा और याद दिलाने पर कंधे उछालता होगा।" झट बीरबल ने जवाब दिया।

तुरंत बीरबल को जागीरी मिल गयी।

एक दफ़े बीरबल के एक दूर के रिश्तेदार ने बड़ा अपराध किया। बादशाह ने इन्साफ़ करके उसे मौत की सज़ा सुनायी। उस दिन बीरबल दरबार में हाज़िर न हुआ था। मगर मौत की सज़ा देने की जगह पर बीरबल भी पहुँचा और संकोच करते हुए बोला—"सरकार, मेरी एक बिनती है!"

"बीरबल, मैं जानता हूँ कि तुम क्या पूछनेवाले हो। मैं तुम्हारीं चाह का तिरस्कार करनेवाला हूँ। फिर भी पूछो, क्या चाहते हो?" अकबर ने कहा।

"सरकार, इस अपराधी को मेहरबानी करके न छोड़िये! यही मेरी बिनती है।" बीरबल ने कहा।

बीरबल की चालाकी पर चकित हो बादशाह ने अपराधी को छोड़ देने का सिपाहियों को आदेश दिया।

तीन घमण्डी

एक गाँव में एक अमीर रहता था। उसका नाम नारायण था। उसके आसपास के गाँवों में नारायण से बढ़कर कोई अमीर न था। इसलिए नारायण और भी ज्यादा घमण्ड करता था। नारायण कभी कभी यह भूल जाना चाहता था कि वह एक बहुत बड़ा अमीर है, लेकिन लोग उसे यह बात भूलने नहीं देते थे।

उस गाँव के पड़ोस में खन्ना नामक एक किसान रहता था। उसके पास सौ से ज्यादा मवेशी थे। आस पास के गाँवों में किसी किसान के पास इतने मवेशी न थे। इस पर खन्ना को बड़ा अभिमान था।

उन दो गाँवों के पास ही मल्लवर्मा नामक एक बलवान आदमी रहता था। उससे ज्यादा बलवान भी अडोस-पडोस के गाँवों में कोई न था। कोई मशहूर पहलवान उन गाँवों में आता, तो मल्लवर्मा कुश्ती लड़ने उसे ललकाराता, उसे हराकर ही भेज देता। इसलिए उसका घमण्ड भी दिन ब दिन बढ़ता गया।

एक बार भद्राचल में श्रीरामनवमी का उत्सव देखने के लिए ये तीनों घमण्डी रवाना हुये। कुछ दिन तक सफ़र करके एक दिन शाम को वे लोग एक सराय में पहुँचे। उसी दिन उस सराय में ठहरने के लिए एक और आदमी भी आया।

उसने उन तीनों को देख पूछा—"आप लोग कौन हैं? और कहाँ से आते हैं?"

तुरंत नारायण बोला—"शायद आप मुझे नहीं जानते, लेकिन मेरा नाम आपने ज़रूर सुना होगा। मुझे नारायण कहते हैं। मेरे गाँव के चारों तरफ़ बहुत दूर तक मुझ जैसा धनवान कोई नहीं है।"

इसी प्रकार अपने मवेशियों के बारे में खन्ना ने बड़ा-चढ़ा कर सुनाया तो

मल्लवर्मा ने यहाँ तक कहा कि उसके हाथों में हार न खानेवाला पहलवान दुनिया-भर में नहीं है। सबने अपने अपने परिचय के बाद कहा कि हम भद्राचल में श्रीरामनवमी का उत्सव देखने जा रहे हैं।

"बड़ी खुशी की बात है! मेरे गाँव से होकर ही भद्राचल का रास्ता जाता है। मेरे गाँव जब पहुँचेंगे तब कृपया मेरे घर आकर आतिथ्य स्वीकार कीजिये और मेरे घर को पवित्र कीजिये।" नये आदमी ने बड़े प्रेम से कहा।

तीन घमण्डियों ने उस नवागंतुक का नाम और गाँव पूछे बिना बड़ी लापरवाही से जवाब दिया—"हाँ, हाँ, देखा जायगा।"

वह रात वहीं बिताकर दूसरे दिन जब फिर तीनों रवाना हुए, उस वक्त देखा—वह नया आदमी नहीं था।

चलते-चलते दुपहर हुई। भूख सता रही थी। उसी समय रास्ते के किनारे उन लोगों ने देखा—एक विशाल मैदान था। उसके चारों तरफ़ बाड़ी लगी थी और उसमें हज़ारों मवेशी घास चर रहे थे। वह बाड़ी इतनी दूर तक फैली थी, जितनी दूर आँखें देख सकती हैं।

सौ से ज़्यादा मवेशियों का मालिक खन्ना बोला—"देखते हो, मैदान के चारों तरफ़ बाड़ी लगी है, न मालूम इसमें कितने गाँवों के मवेशी जमा हैं।"

इतने में उनके सामने एक आदमी आया। खन्ना ने उससे पूछा—"ये मवेशी कितने गाँवों के हैं?"

"हूँ! कितने गाँवों के? वे सब हमारे मालिक शंकरजी के हैं। यह सारी बाड़ी उन्हीं की है।" वह आदमी बोला। खन्ना का चेहरा सफ़ेद हो उठा।

"शंकरजी कहाँ रहते हैं?" नारायण ने उस आदमी से पूछा।

"देखो, वे सब पेड़ शंकरजी के घर के अहाते के हैं।" नौकर ने जवाब दिया।

वे तीनों साथी और आगे बढ़े।

मवेशियों का अहाता पार कर ज्यों ही वे थोड़ी दूर पहुँचे, त्यों ही उन्हें एक ऊँची चहार दीवारी और एक बड़ा दर्वाजा दिखायी पड़ा। दर्वाजे पर एक बहुत बड़ा भीम जैसा आदमी पहरा दे रहा था।

"यह किसका घर है, भाई!" मल्लवर्मा ने उस पहरेदार से पूछा।

"शंकरजी का घर है।" पहरेदार ने कहा।

मल्लवर्मा भीतर घुसने लगा।

"ठहरो, कहाँ जाते हो?" पहरेदार ने डाँट भरे स्वर में गरजते मल्लवर्मा के कंधे पर हाथ डाला और उसे रोक दिया।

मल्लवर्मा के क्रोध का पारा चढ़ गया। उसका हाथ झाड़ना चाहा। लेकिन फ़ायदा न रहा। फिर अपने दोनों हाथों से उसके हाथ को हटाना चाहा, इस बार भी कोई लाभ न था। मल्लवर्मा के शरीर से पसीना छूटने लगा। इतने में घोड़े पर सवार हो वह नया आदमी आ पहुँचा जो सराय में उनसे मिला था।

"आप लोग आ गये? भीतर पधारिये। मैं आप लोगों से पहले पहुँचना चाहता था, लेकिन देरी हो गयी। यही मेरा घर है।" घुड़सवार ने कहा।

वे तीनों काँपते कलेजों के साथ घर के भीतर पहुँचे। घर इंद्र भवन जैसा था। जहाँ भी देखो, हाथी दाँत की बनी कुर्सियाँ, सोने और चाँदी की चीज़ें सजायी गयी थीं। शंकरजी ने सब को सोने के थालों में बढ़िया भोजन खिलाया। थोड़ी देर आराम करके वे तीन विनय के साथ उनसे आज्ञा लेकर अपने रास्ते चले।

इसके बाद उन तीनों ने किसी के सामने अपने बड़प्पन की डींग नहीं मारी।
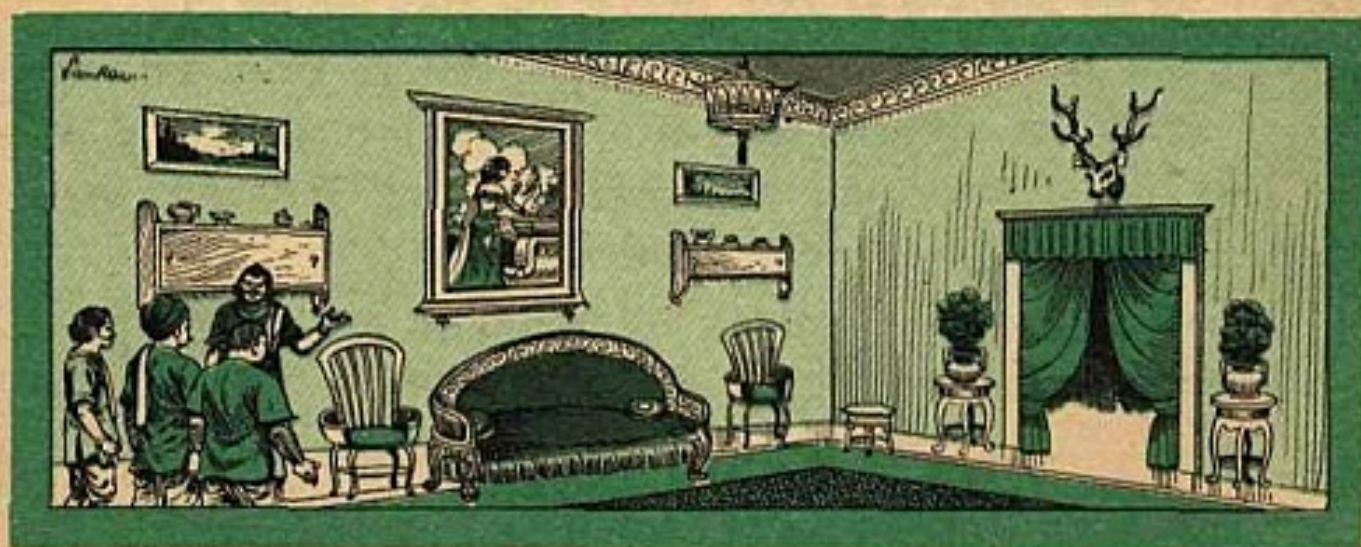
कोशिश और क़िस्मत

एक गाँव में दो भाई थे। अपने घर के पिछावाड़े में तरकारी पैदा कर बड़ा भाई अपने और अपने छोटे भाई का पेट पालता था। छोटा भाई बड़े भाई के काम में मदद नहीं देता था और कम से कम एहसान मंद भी न था।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन बड़े भाई ने छोटे भाई को बुलाकर समझाया—"भैया! तुम हाथ-पैर नहीं चलाते हो तो मैं कितने दिन तक तुम्हारा बोझ उठा सकता हूँ। तुम खुद अपने बोझ को उठाने के लिए कुछ काम तो करो।"

छोटे ने बड़े की बात पर ध्यान दिये बिना जवाब दिया—"क़िस्मत साथ दे, तो कुछ हो सकता हैं, पर कोशिश करने से क्या होगा। मुझे तो मनुष्य की कोशिश पर यक़ीन नहीं है। भगवान चाहेंगे तो सब कुछ होगा, इसलिए मैं किसी भी प्रकार की कोशिश नहीं करूँगा।"

इस पर बड़ा भाई नाराज़ हो गया। दोनों में कहा-सुनी हुई। बड़े ने कहा—"मनुष्य की कोशिश के बिना कुछ नहीं होगा।" छोटे ने कहा—"क़िस्मत साथ दे तो किसी भी तरह की कोशिश की ज़रूरत न होगी।"

दोनों भाइयों के बीच बड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहा और आखिर दोनों ने राजा के पास जाकर शिकायत की।

राजा ने दोनों की दलीलें सुनीं और कहा—"मैं फ़ैसला नहीं कर पाता हूँ कि किसका कहना सही है। मंत्री, तुम्हीं इसका फ़ैसला करो।"

"महाराज, मुझे आज रात की मोहलत दीजिये। इन दोनों की दलीलों में कौन

रमादेवी

सच है, मैं कल सुबह बता सकता हूँ।" मंत्री ने जवाब दिया।

इस रात को मंत्री ने दोनों भाइयों को कालीजी के मंदिर में क़ैद कराया। मंदिर के अन्दर ऐसा घना अंधेरा था कि आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी कुछ दीखता न था। दोनों भाई अपनी इस दुर्दशा पर पछताने लगे।

रात के बीतते बीतते भूख भी उन्हें सताने लगी! क़िस्मत पर यक़ीन करनेवाला छोटा भाई भूख को सहते अपनी ही जगह बैठा रह गया। लेकिन प्रयत्न पर विश्वास करनेवाला बड़ा भाई बाहर जाने का मार्ग ढूंढ़ने लगा। अंधेरे में टटोलते सारा मंदिर घूमता रहा।

टटोलते-टटोलते उसके हाथ में एक थाली लग गयी। उसमें से खीर की खुशबू आने लगी। उसने चखकर देखा और सोचा कि कालीमाता को दिया गया यह नैवेद्य होगा। फिर डटकर पी डाला। पीते-पीते बीच-बीच कुछ कंकड़ जैसे दांतों में जो लगे, उनको निकालकर अपने छोटे भाई की ओर फेंकता जाता था।

खीर समाप्त हो गयी। बड़े भाई की भूख मिट गयी। वह मन ही मन खुश होने लगा कि उसका छोटा भाई कोई यत्न

किये बिना क़िस्मत पर विश्वास करके बैठा है, भूख के मारे तड़पता होगा और उसे इस तरह अच्छा दण्ड मिला। उसे मनुष्य के यत्न का मूल्य मालूम हो जायगा।

दूसरे दिन सवेरे मंत्री के सिपाही आये और उन दोनों को मंदिर के क़ैद से छुड़ा कर राज-दरबार में ले गये।

मंत्री ने उनको देख हँसते हुए पूछा–"रात कैसे बितायी?"

"सब कार्यों के लिए मनुष्य की कोशिश की ज़रूरत है। यह बात मैंने कल रात को साबित कर दी। अंधेरे में टटोलते हुए गया, खीर खाकर भूख मिटायी और आराम से सो गया।" बड़े भाई ने कहा।

मंत्री ने छोटे की ओर मुखातिब होकर पूछा–"तुमने क्या किया?"

"मैंने कुछ नहीं किया। एक कोने में बैठा रहा। थोड़ी देर बाद मेरे भाई मुझ पर कोई कंकड़ फेंकने लगे। उन सबको मैं इकट्ठा कर छिपाता गया।" छोटे भाई ने कहा।

"वे कंकड़ अब तुम्हारे पास हैं? दिखाओ तो।" मंत्री ने पूछा।

छोटे भाई ने कपड़े में बांधे कंकड़ निकाल कर उसे खोलकर दिखाया। वे कंकड़ नहीं थे, क़ीमती रत्न थे।

"महाराज, मैंने इन दोनों की दलीलों की जाँच करने यह परीक्षा ली। बड़े भाई की कोशिश से मिलान करके देखें तो छोटे की क़िस्मत से अच्छा फल मिला है। क़िस्मत के न होने के कारण ही, बड़े भाई ने अपने हाथ में आये रत्नों को कंकड़ समझ कर अपने छोटे भाई पर फेंक दिया है।" मंत्री ने कहा।

राजा ने उन रत्नों को छोटे को ही रखने की अनुमति दी। इसके बाद दोनों भाई अपने-अपने घर चले गये।

दक्षिणापथ के मित्रों की सलाह रुक्मि को बड़ी अच्छी लगी। तुरन्त उसने एक सजी हुई सभा-भवन में जुआ खेलने के लिए सोने के पाँसें आदि का प्रबन्ध कराया। इसके बाद बलराम के पास खबर भेजी कि मनोरंजन के लिए थोड़ी देर जुआ खेलने आवें। जुआ के प्रेमी बड़े उत्साह के साथ आ पहुँचे।

बलराम के साथ रुक्मि ही खेले तो अच्छा होगा। यह सलाह दाक्षिणात्यों ने दी। दाँव पर रखने के लिए मोती, रत्न और सोने के ढेर लगाये गये। जुआ शुरू हो गया। दस हजार स्वर्ण-मुद्राएँ दाँव पर रखकर बलराम हार गये। फिर उतनी ही मुद्राएँ हार गये। इस तरह बार बार बलराम हारते जा रहे थे।

आखिरकार बलराम एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दाँव पर लगाकर जीत गये। लेकिन रुक्मि जोर से चिल्ला उठा कि जीत उसीकी है—"बलराम दाँव लगाना नहीं जानतें। देखिये, मैंने करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं जीत ली हैं।" रुक्मि ने कहा।

उसका मित्र कलिंग राजा दांत दिखाते हँसते हुए बोला—"सच है, रुक्मि ठीक कहते हैं।"

बलराम को बड़ा क्रोध आया। लेकिन उसने अपने आप पर नियन्त्रण रखा। वहाँ इकट्ठे लोगों को संबोधित करते हुए बोला—"जीत तो मेरी है! लेकिन ये कहते हैं कि ये जीत गये हैं। यह कैसा अन्याय है। आप लोग सत्य कहिये।"

१९. नरकासुर की उद्दण्डता
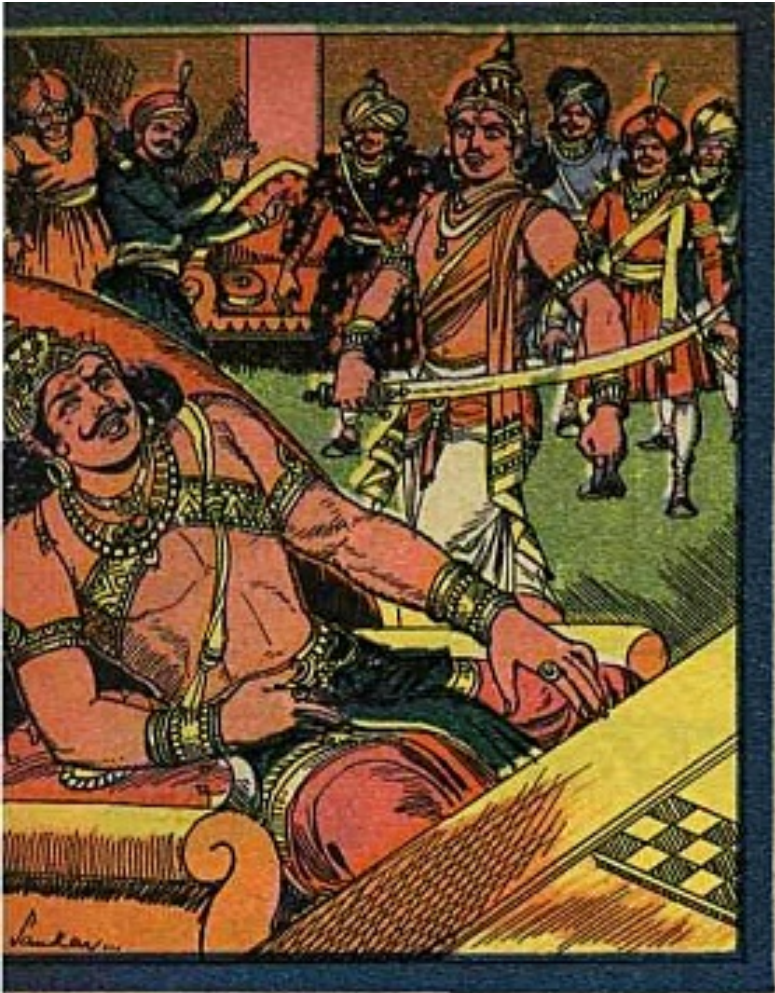
सबने सर झुका लिये। किसीने जवाब नहीं दिया।

रुक्मि बलराम से बोला–"इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं जीत गया हूँ। तुम क्यों नाहक़ झूठ बोलते हो?" बलराम की समझ में नहीं आया कि इस सफ़ेद झूठ का जवाब क्या देना है? इतने में ही कोई आकाश-वाणी सुनाई दी–"बलराम का कहना सच है! रुक्मि झूठ बोलता है। तुम लोग लक्कड़ की भांति मौन क्यों बैठे हो?"

तब भी कोई बोला तक नहीं। बलराम अपने ऊपर नियन्त्रण न कर सका। आवेश में आकार रुक्मि पर ऐसे मुक्के मारे कि वह वही पर ठंडा हो गया। जुए का फ़लक लेकर कालिग के सिर पर दे मारा जिससे उसका सर फूट गया। बचे हुए राजा जब उन पर टूट पड़े तब बलराम ने सबकी तलवारें काट डालीं। कुछ लोग मरे और बाक़ी लोग डर के मारे भाग खड़े हो गये।

बलराम ने इस तरह बीभत्स किया, तदनंतर अपने निवास में जाकर कृष्ण से मारी बातें बतायीं। कृष्ण ने उस घटना का न विरोध किया और न उसके प्रति हर्ष ही व्यक्त किया। लेकिन शेष यादवों ने बलराम के कार्य की बड़ी प्रशंसा की और अपनी तृप्ति भी प्रकट की। उसके बाद वधू-वरों को साथ लेकर सब द्वारका लौट आये।

बलराम असाधारण बल-पराक्रम तथा शक्ति और सामर्थ्य रखनेवाले हैं। दस हजार हाथियों की ताक़त रखनेवाले के रूप में यश-प्राप्त किया था। लोगों में यह भी विश्वास था कि भीम और बलराम के बीच युद्ध हो जाए तो भीम की ही विजय होगी. इस बात में संदेह था।

एक बार कृष्ण का पुत्र सांब दुर्योधन की पुत्री लक्षणा पर मोहित हो उसे भगा ले जा रहा था। उस वक़्त कौरवों ने सांब का पीछा करके उसे पकड़ लिया और हस्तिनापुर लाकर उसे बंदी बनाया। यह समाचार मालूम होते ही बलराम क्रुद्ध हो गये और हस्तिनापुर जाकर सांब को छुड़ाने का निवेदन किया। पर कौरवों ने नहीं माना।

इस पर बलराम ने हस्तिनापुर को घर और प्रजा सहित गंगाजी में डुबो देने की प्रतिज्ञा की और दुर्ग के प्राकार के नीचे अपने हल को डालकर उखाड़ने की कोशिश की।

दुर्योधन घबरा उठे। सांब को बलराम के हाथों में सौंपते हुए कौरवों ने उनको शांत किया। साथ ही दुर्योधन ने बलराम के शिष्य बने रहने का निवेदन करके, गुरु-पूजा की। बलराम के प्रयत्न के कारण हस्तिनापुर की एक दिशा ऊपर उठकर सदा के लिए रह गयी और दूसरी दिशा ढलाऊ रह गयी। दुर्योधन ने बलराम के शिष्य के रूप में गदा-युद्ध में अनुपम यश प्राप्त किया।

उन्हीं दिनों में राक्षस-समूह में नरकासुर प्रचंड रूप में लोगों के सामने आया।

उसकी राजधानी प्रागज्योतिषपुर है। वह भूदेवी का पुत्र है। उसने ब्रह्मा से वर पाये थे। देवताओं से भी हारनेवाला न था। उसने सभी लोकों को अपने बल-पराक्रम से थर्रा दिया था।

नरकासुर ने सर्वप्रथम इंद्र के नगर पर राक्षस-सेना के साथ हमला किया; नगर के दरवाज़ों को अपने मुक्के के आघातों से तोड़ दिया; आखिर सिंहनाद करते इंद्र को युद्ध के लिए ललकारा। ऐरावत पर सवार होकर, हाथ में वज्रायुध धारण करके ज्यों ही इंद्र उसके सामने आये त्यों ही नरकासुर उनकी परवाह किये बिना, उनसे

जूझ पड़ा । इंद्र की सहायता के लिए यम, वरुण और कुबेर भी अपनी सेनाओं के साथ युद्ध में भाग लेने लगे ।

नरकासुर की मदद के लिए हयग्रीव, निशंभू और मूरु नामक तीन राक्षस-नेता आये थे । उनमें हयग्रीव के साथ वरुण ने युद्ध किया । उसमें उसका सर फूट गया । अंत में खून उगलते बेहोश हो गया । ज्यों ही वह होश में आया त्यों ही डर के मारे भाग गया । उसके साथ उसकी सेना भी भाग खड़ी हुई । आखिर नरकासुर के आघातों से घबराकर इंद्र भी युद्ध के मैदान से भाग गये । नरकासुर ने अमरावती नगर में प्रवेश करके समस्त देवलोक में अपनी विजय की घोषणा करायी ।

तदनंतर नरकासुर इंद्र के सिंहासन पर आसीन हुआ और ऊर्वशी को बुला भेजकर उससे कहा–"मैंने सब दिक्पालकों को पराजित किया है । आगे से सभी देवताओं का मैं ही राज़ा हूँ; इसलिए आज से तुम मुझे सुख दो ।"

इस पर ऊर्वशी ने कहा–"अच्छी बात है । यदि सभी मुनि यज्ञों में तुम्हारी पूजा करे तो मैं तुम्हारी दासी नियमित रूप से बनकर रहूँगी ।" नरकासुर ने ऊर्वशी की बात मान ली । इसके बाद नरकासुर ने अमरावती को लूटा; सुमेरु पर्वत में स्थित रत्नों के ढेरों को खुदवाया; आठ हज़ार देव-कन्याओं को बंदी बनाया; विश्वकर्मा की पुत्री को भी क़ैद किया और रत्न-जड़ित अतिथि के कर्णकुंडलों को छीनकर अपने नगर में वापस आया ।

नरकासुर का आदेश पाकर उसके अनुचर राक्षस चौदहों लोकों में घूमने लगे और उन्हें जो भी क़ीमती वस्तु मिली उसे लाकर नरकासुर को देते गये । वे जहाँ भी जाते वहाँ के लोगों को यातनाएँ देते । सभी अप्सरा-नारियों को बंदी बनाकर

लाये। इनके अलावा सोल्ह हजार एक सौ गंधर्व-कन्याओं, कई लाख यक्ष-नारियों तथा असंख्य किन्नर, सिद्ध, साध्य और विद्याधर स्त्रियों को क़ैद करके लायें।

प्राग्ज्योतिष नगर के चतुर्दिक की रक्षा क्रमशः चार महा योद्धा–मुर, हयग्रीव, निशंभु और पंचजन करते थे। मुरासुर के कई हज़ार पुत्र थे। उनके कारण नरकासुर का नगर किसी तरह की हानि के बिना सुरक्षित था।

एक बार नरक के मन में सारे भूलोक पर अधिकार करने की इच्छा हुई। सब जगह घूमते उसने यज्ञों को ध्वंस किया। ब्राह्मणों का वध किया; मुनियों को सताया; राजाओं को तरह-तरह की यातनाएँ दीं। धर्म का नाश करना ही उसने अपना लक्ष्य बनाया।

एक बार नरक जब बदरीवन में पहुँचा वहाँ अनेक मुनि यज्ञ के कार्य में मग्न थे। उस समय नरकासुर को ऊर्वशी की बातें याद आयीं। उसने ऋषियों से पूछा–"तुम लोग किसके प्रति यज्ञ करते हो?"

"हम वेदों में कहे अनुसार इंद्र के प्रति यज्ञ करते हैं।" ऋषियों ने जवाब दिया।

यह जवाब सुनकर नरक नाराज़ हो गया और बोला–"मैंने तुम्हारे इंद्र को वरुण, यम और कुबेर सहित युद्ध में हरा दिया है। उसके सारे राज्य को जीत लिया है। इस वक़्त सारे विश्व का मैं ही राजा हूँ, इसलिए तुम लोग मेरी पूजा करो; मेरी वंदना करो। अगर तुम लोग मुझे संतुष्ट करोगे तो मैं तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करूँगा।"

ऋषियों ने नरक को जवाब दिया–"तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। सभी लोकों पर शासन करनेवाले इंद्र ही हैं। तुम दुष्ट राक्षस हो। तुम्हारी पूजा हम क्यों करें?"

ऋषियों की बातें सुनकर नरक आग-बबूला हो उठा । अपने सेवकों को आदेश दिया–"ये ब्राह्मण मद में आकर अंट-संट बक रहे हैं । इनके यज्ञ ध्वंस कर डालो ।" तुरंत राक्षसों ने अग्नि-कुंडों को भर दिया; यज्ञ-पशुओं का नाश किया । होता, उद्गाता तथा सदसों को मार दिया । स्रुक-स्रुवाओं को फेंक दिया । अरणों को जला दिया ; हविस को खा डाला ; अन्न के ढेरों को लात मारा । सोमरस को खाक में मिला दिया । ऋषि-पत्नियों का मान-भंग किया ; उनकी कन्याओं को बंदी बनाया । इस तरह बीभत्स करने के बाद नरकासुर प्रागज्योतिष नगर को लौट पड़ा ।

इसके बाद वशिष्ठ, वासुदेव, कपिल, कश्यप, कण्व, जाबाली, धूम्य, भरद्वाज, मंकण इत्यादि महर्षियों ने बैठकर विचार किया कि उनके यज्ञ में इस तरह का विघ्न क्यों हुआ । उनकी पतिव्रता नारियां इस तरह क्यों अपमानित हुई ? ऐसे दुष्ट से बचाने के लिए समर्थ व्यक्ति कोई न हो तो उनकी जिन्दगी बरबाद हो जाएगी । अंत में उन लोगों ने निश्चय किया कि अवतार पुरुष कृष्ण के द्वारा ही उनकी रक्षा हो सकेगी । यह निश्चय करके वे सब द्वारका के लिए रवाना हुए ।

वे महर्षि दक्षिणाभिमुखी हो यात्रा करते हुए रास्ते में जो भी तीर्थ आया उसमें स्नान करते हुए भागीरथी के तट पर पहुँचे । उसमें भी स्नान करके प्रयश्चित्त किया । फिर प्रति दिन यात्रा करते हुए स्वर्ग से भी बढ़कर वैभवशालिनी द्वारका नगरी में पहुँच गये । उस नगर के ऐश्वर्य पर चकित हो राज-पथ से चलते आखिर राजमहल पहुँचे । वहाँ पर कृष्ण को खबर भेजी कि बदरीवन से महर्षि उनके दर्शन के लिए आये हैं ।
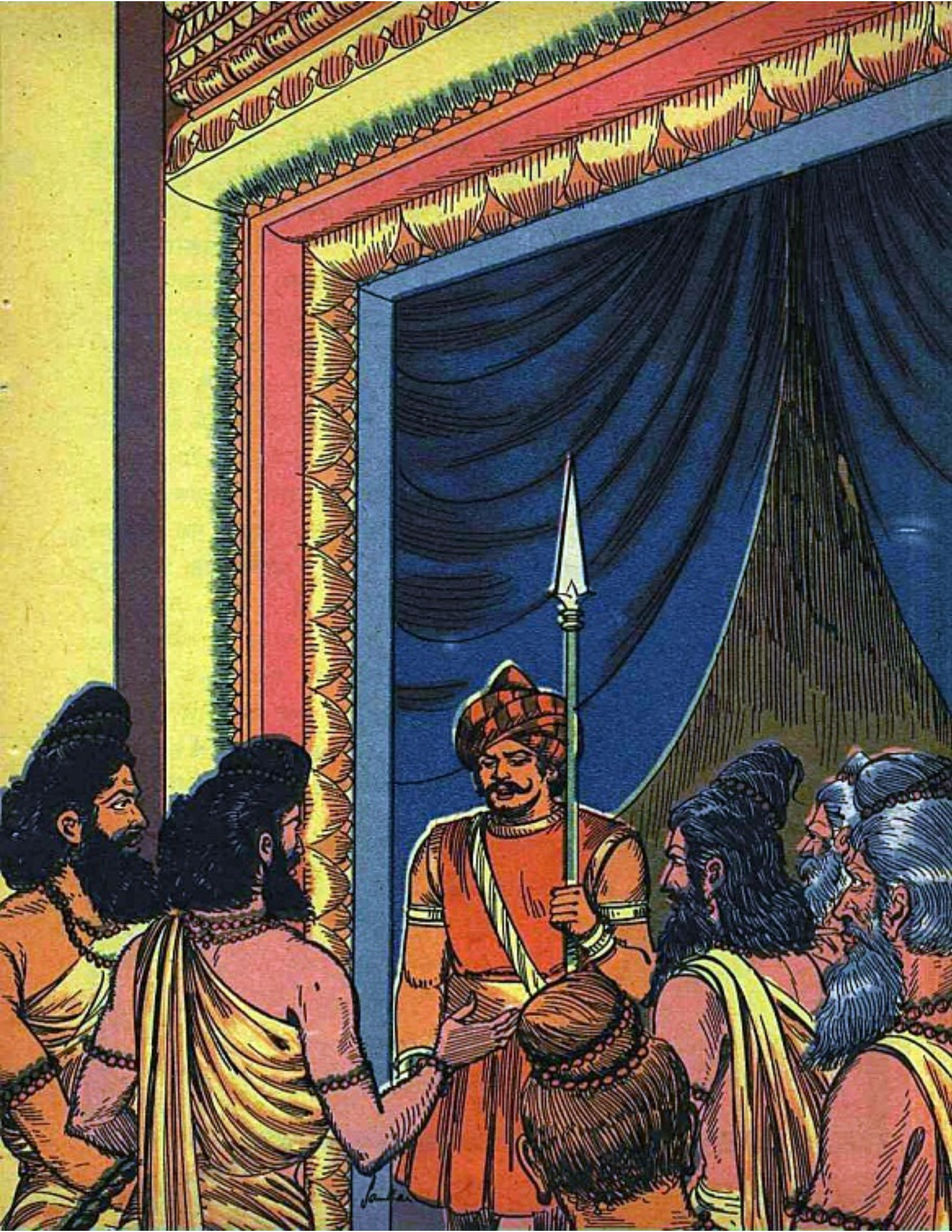
कृष्ण ने उनके आगमन का समाचार सुनते ही प्रद्युम्न को बुलाया और महर्षियों का उचित रीति से स्वागत करके उन्हें लिवा लाने का आदेश दिया। प्रद्युम्न ने बाहर आकर आदर के साथ ऋषियों का स्वागत किया और उनको 'सुधर्म' सभाभवन में ले गया, जहाँ पर कृष्ण राज सभा में विराजमान थे।

सभा भवन में यादव सब कृष्ण की सेवा में उपस्थित थे। कृष्ण एक ऊँचे आसन पर विराजमान थे। ऋषियों ने मन में सोचा-"हमारी कामनाओं की पूर्ति करके रक्षा करनेवाले कृष्ण के रहते, आज तक हम लोग उस राक्षस के हाथों में अपमानित क्यों हो रहे थे? शायद प्रारब्ध इसी को कहते हैं। लेकिन कम से कम विलंब से ही सही उन महात्मा के दर्शन कर सके। तपस्या के नाम पर जंगलों में तपनेवाले हमें उस राक्षस के कारण कृष्ण के दर्शन का बहुत बड़ा लाभ हुआ।" यह सोचते वे लोग कृष्ण के निकट पहुँचे।

कृष्ण तुरंत अपने आसन से उठकर नीचे उतर आये, महर्षियों को नमस्कार किया; उनको उचित आसनों पर बिठाया; अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्कों से उनका सत्कार किया; तब उनकी अनुमति पाकर फिर अपने आसन पर जा बैठे। कृष्ण के बाद प्रमुख यादवों ने महर्षियों को प्रणाम किया और वे भी अपने-अपने आसनों पर जा बैठे।

इसके उपरांत कृष्ण ने हाथ जोड़कर महर्षियों से पूछा-"आपके यज्ञ निर्विघ्न चल रहे हैं न? आपके व्रत और तप यथा प्रकार हो रहे हैं न? आप सब के यहाँ आने का कोई कारण तो नहीं? मुझ पर अनुग्रह करके, मुझे कृतार्थ करने के विचार से आप सब यहाँ पधारे होंगे। आप सब मुझे आज्ञा दें तो मैं बड़े हर्ष के साथ उसकी पूर्ति करने में तैयार हूँ।"

अरण्य पुराण

[२२]

मौवली के मनुष्यों के बीच से अरण्य में आने के बाद, कावा के साथ उसकी पुरानी दोस्ती वैसे ही क़ायम रही। जिस दिन बंदर उसे खंडहरों में उठा ले गया था, उस वक़्त कावा ने उसकी रक्षा की थी। यह बात मौवली कभी भूल न सका।

एक बार और काबा के केंचुली बदलने का समाचार जानकर मौवली उसे देखने गया। केंचुली बदलने के बाद नये चर्म के कसने तक कावा निस्तेज रहता है।

मौवली अब कावा के लिए पुराना छोटा बालक नहीं, शेष अरण्य-वासियों की भांति कावा ने भी उसे जंगल का नेता स्वीकार किया और जंगल के सारे समाचार उसे सुनाने लगा।

दोपहर हुई। काबा के शरीर की कुंडली के बीच मौवली आरामकुर्सी में की भांति बैठ गया। चारों तरफ़ फैली काबा की केंचुली को पत्थरों के छेदों से निकालकर, उंगलियों से पकड़कर देख रहा था।

"आँखों पर की परत कैसी साफ़ है?" मौवली ने कहा।

"तुम्हारा चमड़ा कभी पुराना होकर कड़ा नहीं होता?" काबा ने पूछा।

"जब मुझे ऐसा लगता है तब मैं नहा लेता हूँ। उमस ज्यादा होती है तो चमड़े की परत निकल जाती है तब लगता है कि दौड़ जाऊँ तो क्या ही अच्छा हो!" मौवली ने कहा।

"मैं चर्म-का विसर्जन करता हूँ, नहाता भी हूँ। मेरा नया चमड़ा कैसा है?" काबा ने पूछा।

मौवली कावा के चमड़े पर के चकत्तों पर हाथ फेरते बोला—"कछुए का चमड़ा

अन्तिम पृष्ठ

इससे भी ज़्यादा कड़ा होता है। लेकिन वह सुंदर नहीं होता। यह तो तितली के परों पर की बिंदियों की भांति बहुत ही सुंदर है।"

"वह पानी के लगने से ही चिकना हो सकता है। चलो, जाकर नहा लें।" काबा ने कहा।

"क्या मैं तुमको उठाऊँ?" यह कहते मौवली कावा के बीच के हिस्से को पकड़कर उठाने की कोशिश करने लगा। लेकिन उठाते नहीं बना। काबा तमाशा देखते चुपचाप बिना हिले-डुले रह गया।

वे दोनों रोज़ निय्मित रूप से व्यायाम करने लगे। दोनों कुश्ती लड़ते। इस तरह उनके बल और दृष्टि की परीक्षा करते। दोनों में काबा का हाथ ही ऊँचा होता। लेकिन मौवली का शरीर ज्यों ज्यों मज़बूत होता गया त्यों-त्यों उनकी ताक़तों को बढ़ाने के लिए काबा ने ही मौवली को यह खेल सिखाया। एक बार काबा ने मौवली को अपनी कुंडली में पैरों से लेकर गले तक लपेट लिया। तब मौवली ने अपने हाथ को छुड़ाकर, काबा के कंठ को पकड़ने की कोशिश की। इससे काबा ने अपनी कुंडली को ज़रा ढीला कर दिया। मौवली अपने दोनों पौरों के नीचे काबा की पूंछ को दबाकर पकड़ने की कोशिश करता। काबा अपने सर को तेज़ी से उठाकर मौवली की तरफ़ ज़ोर से फेंक देता। मौवली बड़ी होशियारी से उसके सर को बगल में ढकेलकर वार से बचने की कोशिश करता। पर कभी-कभी वह अपने को बचा नहीं पाता। आखिर काबा मौवली पर एक बड़ी चोट करके, दूर फेंक देता, तब खेल समाप्त हो जाता। मौवली हंसते, हांफ़ते उठकर चला आता।

आज भी यह खेल रोज़ की तरह खतम हुआ। बाद दोनों चट्टान के बीचवाले तालाब में जाकर तैरते आराम करते रहे।

"यही सच्चा सुख है। मनुष्यों के समूह में इस वक्त सभी लोग साफ़ हवा से बचते दरवाजे बंद करके लकडी के तख्ते पर लेटे होंगे। बदबूदार कपड़े ओढ़कर बुरे गीत गाते होंगे। यह बात मुझे अच्छी तरह याद है। उसके बदले यह जंगल ही कई गुणा अच्छा है।" मदहोश में आकर मौवली बोला।

कहीं से एक नाग चट्टानों से उतर आया; पानी पीकर यह कहते चला गया– 'मुझे शिकार खेलने जाना है।'

"भाई! तुम जो चाहते हो वह जंगल में मिल जाता है?" काबा ने पूछा।

"सब कहाँ मिलता है? अगर मिल जाए तो हर महीने एक शेर को मार न डालता? बरसात में धूप, गर्मी में वर्षा हो जाए तो क्या ही अच्छा होता! जब भूख से बेहाल हो जाता हूँ तब लगता है, काश! एक बकरी मिल जाती तो कितना अच्छा होगा। बकरी मिल जाए तो सोचता हूँ कि यह हिरन हो जाए तो कितना अच्छा होगा। हिरण मिल जाए तो लगता है कि यह भैंसा क्यों नहीं हुआ? सब की बात यही हैं न?" मौवली ने कहा।

"तुम्हारी और कोई इच्छा नहीं?" काबा ने पूछा।
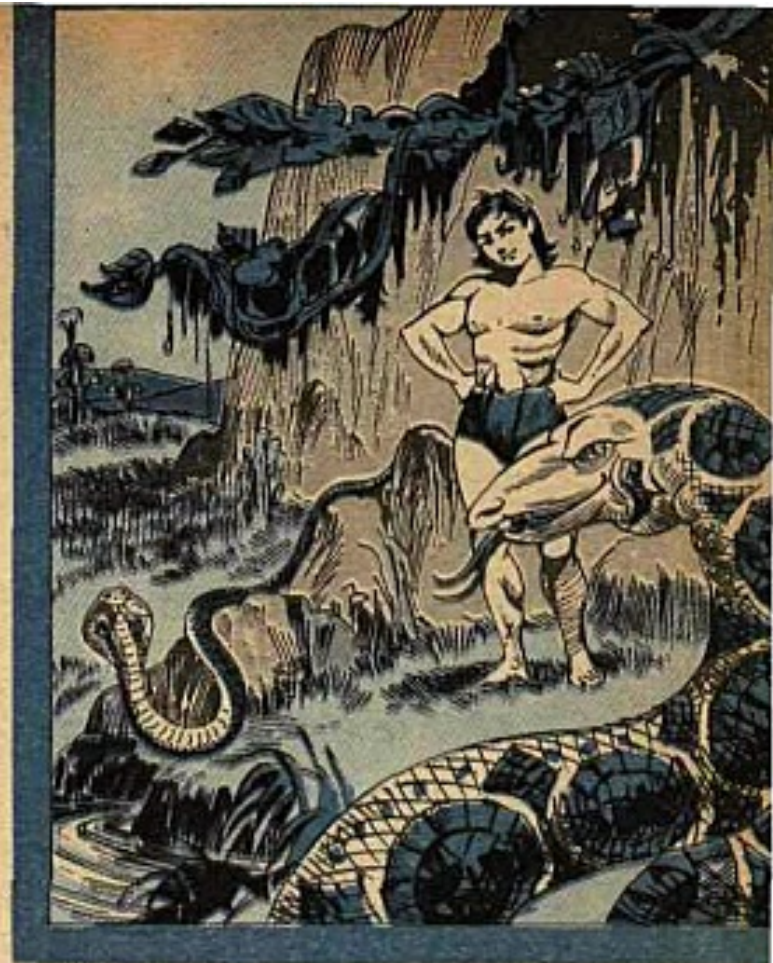
"ऐसी कौन-सी इच्छा होती है जो अरण्य पूरा नहीं करता?" मौवली ने कहा।

"वह नाग जो कह रहा था–" काबा ने कहना शुरू किया।

"कौन-सा नाग? उस नाग ने तो कुछ नहीं कहा?" मौवली बोला।

"यह नहीं, दूसरा नाग है।" काबा ने जवाब दिया।

"मैं समझता हूँ, तुम ज़हरीले कीड़ों से दोस्ती नहीं करते! तुम अपने फ़न से ही बात करते हो।" मौवली ने पूछा।

"तीन-चार महीने के पहले की बात है। खंडहरों में शिकार खेलने गया।

शायद तुम को वह बात याद होगी। वहीं पर एक छोटे-से सुरंग में शिकार करके मैंने थोड़ी देर झपकी ली। उसके बाद नींद से उठकर, उसी सुरंग में आगे बढ़ा तो मुझे एक सफ़ेद फ़न दिखाई दिया। उसने मुझे कई नयी बातें बतायीं और नयी चीजें दिखायीं।" काबा ने कहा।

"नये प्राणी हैं, शिकार खेलने लायक़ हैं?" मौवली ने जिज्ञासा प्रकट करते पूछा।

"उनका शिकार नहीं करते। शिकार खेलने से सारे दांत उखड़ जाएँगे। मनुष्य तो इसे देखने अपनी जान तक देगा। वह सफ़ेद फ़न है।" काबा ने कहा।

"जाकर देखें! मैं भी तो एक समय मनुष्य ही था।" मौवली ने कहा।

"अच्छा, अच्छा! जानते हो? उस सफ़ेद फ़न की उम्र क्या है? जंगल की जितनी उम्र है, उतनी ही उसकी भी उम्र है। मैंने उससे तुम्हारे बारे में कहा भी। वह कह रहा था कि मनुष्य को देखे एक ज़माना ही गुज़र गया। तुम्हें बुला लाने को भी कहा। वहाँ पर जो चीज़ें हैं उन्हें देखने के लिए तुम अपनी जान तक बलि देने को तैयार वे जाओगे!" काबा ने कहा।

"तब तो कोई शिकार करने लायक़ होगा।" मौवली ने उत्सुकता दिखायी।

"नहीं, मैं नहीं जानता कि उसका वर्णन किन शब्दों में करूँ!" काबा बोला।

"वहाँ जाएँगे। मैंने आज तक कभी सफ़ेद नाग को नहीं देखा। उनको भी देखेंगे।" मौवली ने पूछा।

"उनके कोई प्राण नहीं होगा। वह कहता था कि वह उनका रक्षक है!" काबा ने समझाया।

"चलो," यह कहते मौवली पानी से बाहर आया। शरीर को सुखाने के लिए घास पर गिरकर लोटने लगा। इसके बाद दोनों खंडहरों की ओर रवाना हुए।

७६. जापान का "तोरण"

जापान के प्रसिद्ध षिंटो मंदिरों के द्वारों पर इस तरह के कुछ तोरण होते हैं। यहाँ पर दिखाया गया तोरण ('तोरियि') इत्सु कुषिमु पुण्य-तीर्थ का द्वार है। यह पुण्य-तीर्थ, अणुबमों द्वारा ध्वस्त हुए हिरोषिमा नगर की पूरब-दखिनी दिशा में है। यह तोरण कपूर-वृक्ष की लकड़ी से बनाया गया है। यह हिरोषिमा खाड़ी पर पचास फुट की ऊँचाई पर खड़ा है।

Photo by Bhalchandra Kadne

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

वेश तुम्हारा सब से प्यारा!

प्रेषक:
शिवराज सिंह - अंबाला

Photo by Prasad

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

खेल तुम्हारा सब से न्यारा!

प्रेषक:
शिवराज सिंह - अंबाला

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

जून १९६८ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ अप्रैल १९६८ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वडपलनी, मद्रास-२६

मार्च – प्रतियोगिता – फल

अप्रैल के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।

इनके प्रेषक को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो : **वेश तुम्हारा सब से प्यारा !**

दूसरा फ़ोटो : **खेल तुम्हारा सब से न्यारा !**

प्रेषक : **श्री शिवराज सिंह,**

१६५ १, हेग लाइन, अम्बाला छावनी, हरियाना.

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'